महाराजा रघु का याग

ब्रह्म० कृष्णदत्त जी
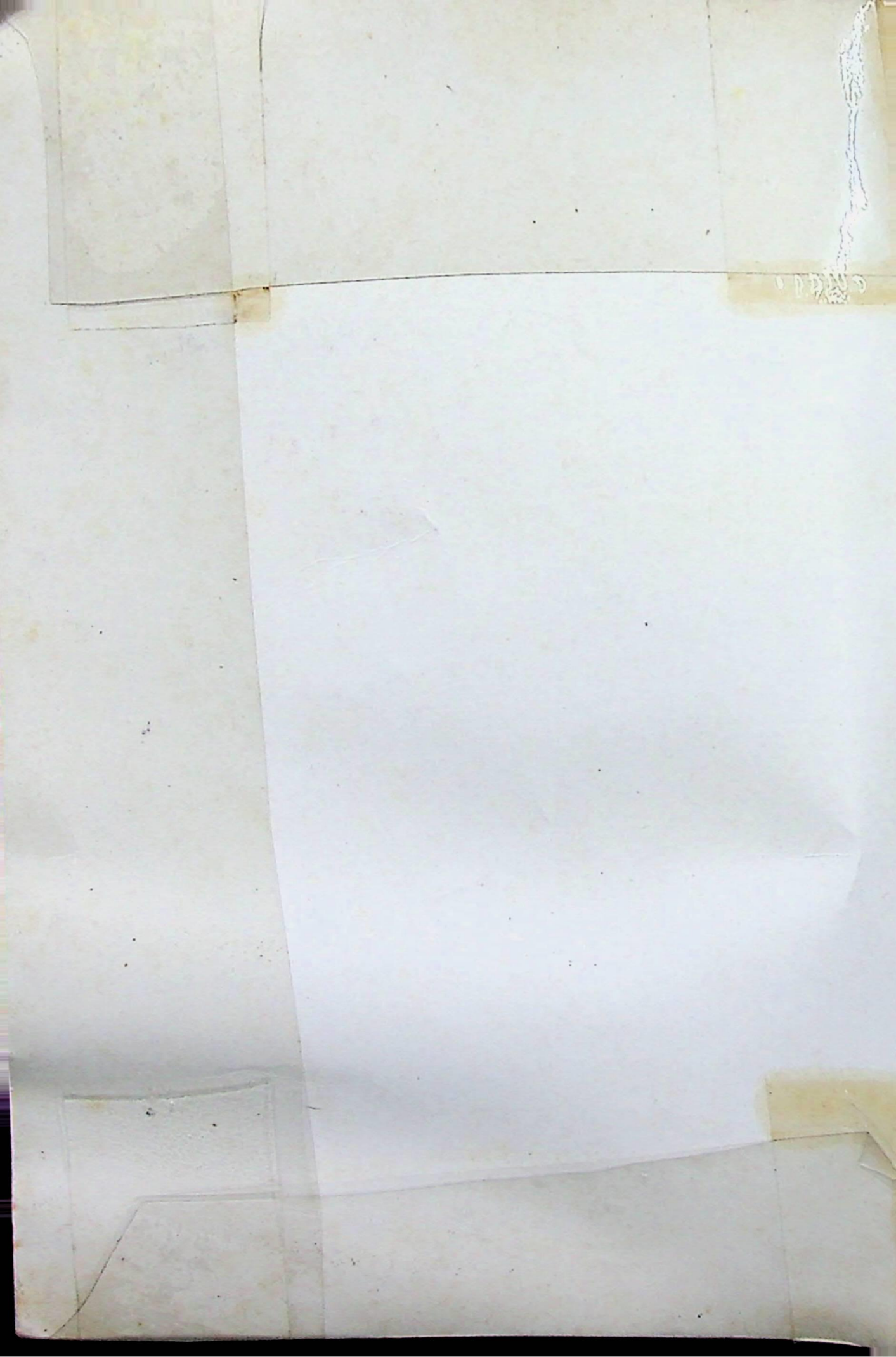
महाराजा रघु का याग

पूज्यपाद ब्रह्म० कृष्णदत्त जी महाराज

के

योग मुद्रा में प्रसारित वैदिक प्रवचन

गांधी धाम समिति (पंजीकृत)

श्री महानंद संस्कृत महाविद्यालय, वारणावत

लाक्षागृह, बरनावा, मेरठ (उ० प्र०) - २५५०३४५

वैदिक अनुसन्धान समिति (पंजिकृत)

१, (प्रथम तल) गोखले मार्केट, तीस हजारी कोर्ट के पास,

दिल्ली-११००५४, फोन: २५१००७१, २६३२६०४

मूल्यः बीस रुपये
प्रथम संस्करणः मार्च १९९३

प्रकाशकः **वैदिक अनुसन्धान समिति (पंजिकृत)**
१, (प्रथम तल) गोखले मार्केट, तीस हजारी कोर्ट के पास,
दिल्ली-११००५४, फोनः २५१००७१

लेसर कम्पोजिंगः **डी.जे.आई. पब्लिकेशनस्,** (कम्प्यूटर विभाग)
न. ३१३/७३-एल., आनन्द नगर, इन्द्रलोक, दिल्ली-३५

मुद्रकः **नव प्रभात प्रिंटिंग प्रेस,**
१/५०५६, गली न. २, बलबीर नगर, शाहदरा, दिल्ली-११००३२.
फोनः २२८५७५३, २२९६५४९

विषय सूची

अंतिम वेद पारायण यज्ञ के ब्रह्मा रूप में ११ अक्तूबर १९९२ को लाजपत नगर, नई दिल्ली में गुरुकुल बरनावा के वेदपाठी सर्वश्री जयवीर और योगेश आर्य के साथ ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी
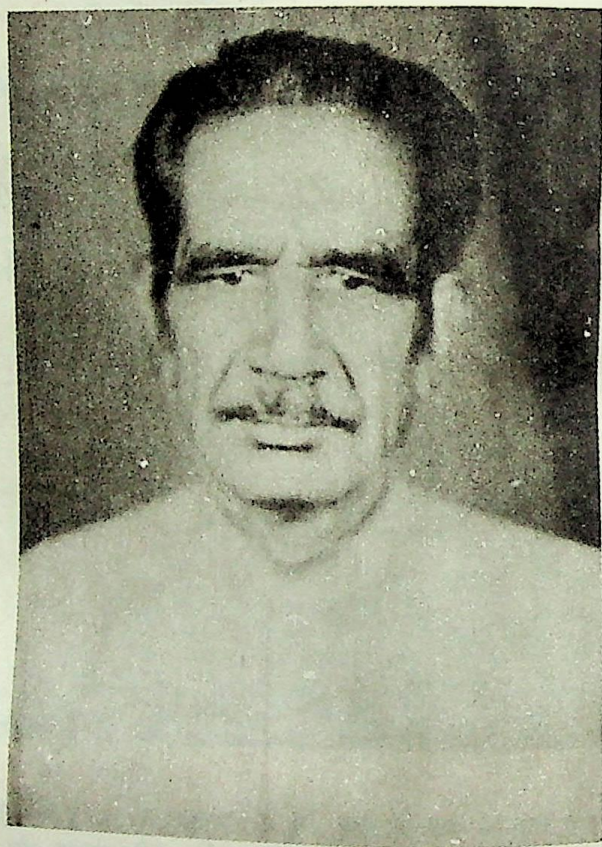
डा० पीतम सिंह चौहान
ग्राम व पोस्ट रमाला, जनपद मेरठ (उ. प्र.) - २५०६१७

भूमिका

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी के प्रवचनों में कर्त्तव्यवाद, श्रेष्ठ आचरण और आहार-व्यवहार की पवित्रता पर विशेष रूप से बल दिया जाता रहा है। उत्तम मानव समाज की रचना के लिये ये गुण नितान्त आवश्यक हैं। कर्मकांड की पद्धति के विषय में उनके शृंखला बद्ध प्रवचन हमें कभी-कभी सुनने को मिलते रहे हैं। शृंगी ऋषि के रूप में उन्होंने जिन प्राचीन ऋषि-मुनियों की सभाओं में भाग लिया उन सभाओं में हुए विचार-विमर्श को भी उन्होंने अन्य ऐतिहासिक तथ्यों के साथ अपने प्रवचनों में वर्णित किया है। प्रवचनों के बीच-बीच में उनके जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार और स्मृति के जागृत हो उठने के स्पष्ट संकेत हमें सुनने को मिलते रहे हैं।

श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय, वारणावत, लाक्षागृह, बरनावा के प्रांगण में स्थित पांच विशाल यज्ञ शालाओं में प्रतिवर्ष शिवरात्रि के बाद पड़ने वाले रविवार से अगले रविवार तक चतुर्वेद पारायण यज्ञ का आयोजन किया जाता है। वर्ष १९९२ में यह यज्ञ ८ मार्च से १५ मार्च तक आयोजित किया गया और इस अवसर पर ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी ने अपने प्रवचनों में महाराजा रघु के सर्वस्व याग की चर्चा की। इससे पूर्व भी लाजपत नगर नई दिल्ली में ११-१२ अप्रैल १९९१ के अपने प्रवचनों में उन्होंने यज्ञ विषय को ही लिया था। इन्हीं कुछ प्रवचनों का संग्रह इस पुस्तक रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

इस पुस्तक का प्रकाशन डा० पीतम सिंह चौहान, ग्राम व पोस्ट-रमाला, जनपद-मेरठ - २५०६१७ के सात्विक दान द्वारा किया गया है। आपके पिता

चौ० बलजीत सिंह जी अपने क्षेत्र के जाने माने वैदिक विचारधारा के सामाजिक कार्यकर्त्ता रहे जिन्होंने अपने दो पुत्रों को गुरुकुल पद्धति में शिक्षित किया और उनके दोनों बड़े पुत्र १९४२ के स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेकर जेल यात्री रहे। डाक्टर साहब ने अपने पुत्र और पुत्रियों को समान रूप से उच्च शिक्षा दिलाई। उनका बड़ा पुत्र एम० बी० बी० एस०, एम० एस० करने के उपरांत वरिष्ठ चिकित्सक है और छोटा पुत्र इंजीनीयर है। दोनों पुत्रियों को भी डाक्टर साहब ने स्नातकोत्तर स्तर तक शिक्षित किया। डा० पीतम सिंह जी स्वयं उ० प्र० शासन के पशुपालन विभाग में राजपत्रित अधिकारी रहे और अब सेवा निवृत हो कर वैदिक विचारधारा के प्रचार प्रसार में पूर्णतः समर्पित हैं।

वैदिक अनुसन्धान समिति डा० पीतम सिंह जी (आजीवन सदस्य संख्या-२७०८) के इस सात्विक दान के लिये आभार व्यक्त करती है और प्रभु से उनके उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन की कामना करती है।

महाराजा रघु का याग - १

देखो मुनिवरो, आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद वाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुण गान गाया जाता है, क्योंकि ये परमपिता परमात्मा महिमावादी हैं और उसका जितना भी यह जड़ जगत अथवा चेतन्य जगत है, उस सर्वत्र ब्रह्मांड के मूल में प्रायः वे परमपिता परमात्मा दृष्टिपात आते रहते हैं। जो भी मानव उस देव की आराधना करता है अथवा उसके गुणों का गुणवादन करने लगता है और अपने को उस परमपिता परमात्मा की धरोहर स्वीकार करने लगता है तो इस संसार के एक-एक कण-कण में वह ब्रह्म ही उसे दृष्टिपात आता रहता है। तो विचार आता है कि हम सदैव उस परमपिता परमात्मा को अपने में और उसका जो यह अनुपंम ब्रह्मांड है चाहे वह जड़ रूप में है चाहे वह चेतन्य रूप में है मानो जड़ रूप में तो सर्वत्र देवताओं का वर्धान हो रहा है और चेतन्यता में जितना भी ज्ञान है अथवा विज्ञान है, ज्ञान और विज्ञान की धारायें वे सब चेतन्य रूप में परिणित रही हैं। चाहे वह ज्ञान एक पक्षी के रूप में है चाहे वह मननशील जो मनीषि कहलाते हैं उनके ही हृदयों में ओत-प्रोत रहता है, यह सर्वत्र एक चेतना का स्रोत्र माना गया है और जितना भी यह जड़ जगत है चाहे वह सूर्य से उर्जा, मानो प्रकाश आ रहा है वह द्यौ से चाहे प्रकाश ले रहा है चाहे वह चन्द्रमा कांति बंन करके रात्रि को अपने गर्भ में धारण कर रहा है चाहे वह पृथ्वी के

गर्भस्थल में नाना प्रकार का खाद्य और खनिज पदार्थ पनप रहा है और जितना भी यह वायु गति कर रहा है चाहे वह प्राण के रूप में है चाहे वह मनस्तव के रूप में विद्यमान है परन्तु उन्हें जड़ जगत कहा जाता है।

विचार आता है कि जितना भी यह चेतन्य और जड़ जगत है उस सर्वत्र ब्रह्मांड में उस परमपिता परमात्मा को हम दृष्टिपात करते रहें और अपने में याज्ञिक बने रहें। याज्ञिक का अभिप्राय यह है कि हमारा जो मन मस्तिष्क है और हृदय है, ये तीन मनके एक ही सूत्र में पिरोये हुए होने चाहियें। वे जब एक सूत्र के मनके होते हैं तो सूत्र में पिरोये हुए होने से वे यज्ञ में ही परिणित रहते हैं। उसको यागमयी माना गया है। जैसे हमारे यहाँ याज्ञवल्क्य और भी नाना आचार्य जनों ने अपना मन्तव्य दिया है। उन्होंने याग के ऊपर बड़ा महत्व दिया है। बेटा ! मैं आज याग के ऊपर कोई विचार देना नहीं चाहता हूँ परन्तु हमारे ऋषि मुनियों ने याग के ऊपर जितनी लेखनियां बद्ध की हैं अथवा जितना भी उन्होंने नाना प्रकार की प्रतिभा में याग को माना है और अंतिम चरण यह रहा है कि जितना भी यह जड़ और चेतन्य जगत है, वह सब याग रूप कहलाता है। बेटा ! उन्होंने अंतिम चरण सीमा पर अपने वाक्यों को पहुँचाया है। परन्तु जब हम यह विचार करने लगते हैं कि वह परमपिता परमात्मा का जो अनुपम जगत यह यज्ञशाला के रूप में प्रायः दृष्टिपात आता है चाहे वह राजा अपने राष्ट्र में याग कर रहा हो, चाहे वह राजा अपनी प्रजा को अनुशासन में चलाने वाला हो, चाहे वह आचार्य अपने विद्यालय में ब्रह्मचारियों को भौतिक और आध्यात्मिक विद्या में परिणित कर रहा हो, चाहे माता अपने गर्भ स्थल में उसे शिक्षार्थी बना रही हो तो मानो यज्ञशाला के रूप में वह सर्वत्र जगत दृष्टिपात आता रहा है।

हमारे ऋषि मुनियों ने चाहे वह एक मंत्रार्थ के द्वारा याज्ञिक, मानो देवता को प्रसन्न करने वाला हो. चाहे वह वेद पारायण, प्रत्येक देवता का

प्रत्येक मंत्र मानो शब्द, आभा में पिरोया हुआ हो, वह सर्वत्र एक यज्ञ रूप माना गया है। तो विचार आता है कि हमारे यहाँ ऋषि मुनि एक-एक मंत्र के द्वारा हूत करते रहे हैं और नाना मंत्रों के द्वारा भी जैसे वेद का याग है, वेद में पारायणता होती रही है परन्तु देखो, यह भी एक याग माना गया है। बहुत से याज्ञिक इस प्रकार के रहे हैं जो बेटा ! एक वेद मंत्र के आधार पर मृत्यु से विजय हो गये हैं और बहुत से विद्वान याज्ञिक इस प्रकार के रहे हैं जिन्होंने एक-एक वेद मंत्र को ले करके सर्वत्र वेद के पारायण के द्वारा याग किया है उन्होंने सब देवताओं को प्रसन्न किया है परन्तु उन सब देवता का सम्बन्ध तो मानव हृदय से रहता है। एक वेद देवता का प्रसंग भी किसी इन्द्रिय से होता है, मन मस्तिष्क से भी होता है। परन्तु देखो, इस यज्ञ के सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा मैं तुम्हें नहीं उच्चारण करूँगा। हमारे ऋषि मुनियों ने इन याग के ऊपर अपना बड़ा महत्व और बड़े याज्ञिक स्वरूप का उन्होंने वर्णन किया है। हमारे यहाँ जो राजा बने हैं वे भी प्रायः याज्ञिक रहे हैं। राजाओं ने अपने राष्ट्र में नाना प्रकार के यागों का चयन किया है जैसे अश्वमेघ याग, अग्निस्टोम याग, अजामेघ यागों का वर्णन भी इसी सूत्र में पिरोया गया है।

मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, एक समय महात्मा महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज अपने आश्रम में विद्यमान थे। हमारे यहाँ वशिष्ठ नाम की एक उपाधि मानी गई है, जो भी उनकी पत्नी है वह भी अरुंधति के रूप में वर्णित रही है। रघुवंश में जितने राजा हुए हैं, राजा सगर हुए हैं और हरिश्चन्द्र हुए है और भी नाना जैसे भागीरथ इत्यादि राजा हुए, उनमें सर्वत्रता में एक वशिष्ठ नाम का पुरोहित रहा है। पुरोहित का अभिप्राय यह है कि यह एक उपाधि है। यह भी हमारे यहाँ एक चलन रहा है, मनु वंश से परम्परा चली आ रही है कि वशिष्ठ उस ऋषि को कहा जाता है जो ब्रह्मवेत्ता है, जो शांति प्रिय है, मानो जो मान अपमान से रहित होता है

जैसे ब्रह्म परमपिता परमात्मा में मान अपमान नहीं क्योंकि वह अकाय है। अकाय होने से मानो उसे मान-अपमान का ज्ञान ही नहीं है, वह ज्ञान है क्योंकि मान-अपमान वहाँ है ही नहीं। इसी प्रकार जो ब्रह्मवेत्ता होते हैं, उनको मान अपमान नहीं होता, वह मान अपमान से रहित जब तक नहीं होता, जब तक ऋषि मुनि उसे ब्रह्मवेत्ता की उपाधि भी नहीं प्रदान करते हैं। तो इसीलिये महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, मान अपमान से रहित होते थे।

एक समय मुनिवरो ! महाराजा रघु भ्रमण करते हुए महर्षि वशिष्ठ मुनि के आश्रम में पहुँचे, क्योंकि अपने प्रजा का वह निरीक्षण किया करते थे कि मेरे राष्ट्र में कोई भी मानव इस प्रकार का गृहस्थ और वाणप्रस्थ और सन्यास का तो प्रसंग नहीं आता, परन्तु ब्रह्मचारी, ये अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं अथवा नहीं। वेद में नाना मंत्र इस प्रकार के आये हैं क्योंकि **वेद धर्म नहीं है, वेद प्रकाश है, जैसे सूर्य है।** सूर्य अपने में प्रकाशमान है, ऐसे ही वेद की जो पवित्र विद्या है, यह धर्म नहीं कहा जाता इसको कर्त्तव्य कहते हैं। यह प्रकाश है अपने में, और प्रकाश कहते हैं ज्ञान को और यह ज्ञान संसार में किसी की धरोहर नहीं है, यह सर्वत्रता में विद्यमान है। यह ज्ञान पशु में भी होता है, मानव में भी होता है। यह मानव समाज ऐसा है कि यह अपनी पद्धत्तियों को निर्धारित कर सकता है, राष्ट्र का निर्माण कर लेता है तो इसीलिये इसमें विशिष्टता मानी गई है। यह पूर्ण होने से, अपने क्रिया कलापों में पूर्ण होने से इसका महत्व विशेष माना गया है। तो विचार आता रहता है कि राजा रघु अपने राष्ट्र का निरीक्षण करते रहे कि मेरे राष्ट्र में ब्रह्मचारी अपने ब्रह्मचर्य का पालन भी करते हैं अथवा नहीं और इसी प्रकार से गृह आश्रम में रहने वाला गृहस्थ अपने में गृहस्थ का पालन भी कर रहा है, अथवा उनके गृह में याग भी होता है या नहीं, दर्शनों का अध्ययन भी होता है अथवा नहीं। इस प्रकार से राजा अपने राष्ट्र का निरीक्षण किया करता। वह अपने आचार्यों के समीप विद्यमान होता कि विद्यालयों

में ब्रह्मचारी विद्या का अध्ययन कर रहा है तो किस प्रकार से कर रहा है, कैसी विद्या का अध्ययन चल रहा है, आचार्य अपने आचार में कितना कुशल है, कितना महान है और वह कितना तपस्वी है। इस सर्वत्रता का निरीक्षण करना राजा का कर्त्तव्य कहा जाता है।

राजा रघु अपने राष्ट्र में निरीक्षण कर रहे थे तो रात्रि छा गई। रात्रि के समय भयंकर वन में महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के आश्रम में उनका वास हुआ और राजा का वास होने से ऋषि बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा आईये राजन्। उनका उचित स्थान विद्यमान था। जब वे अपने उचित स्थान पर विद्यमान हो गये तो वशिष्ठ मुनि महाराज अपने में विचार विनिमय कर रहे थे। उन्होंने प्रोडाष, प्रोडाष्टम ब्रही क्रतम्मे, वेद मंत्र का उद्‌गीत गाया और कहा हे राजन ! वेद मंत्र में ऐसा आता है कि राजा को अपने यहाँ प्रोड़ाष बनाना चाहिये क्योंकि प्रोडाष का अभिप्राय यह है कि अपने राष्ट्र को कुशलता में और मानो देखो, उसमें हवि बना करके भव्य पदार्थों का उसे याग करना चाहिये। ऐसा देखो, वेद मंत्र कह रहा है राजन्। मेरे प्यारे देखो, रात्रि समय कुछ विचार हुआ और फिर निद्रा की गोद में चले गये।

प्रातःकाल में महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराजा और माता अरुंधति अपने ब्रह्मचारियों के मध्य में, मानो अपनी सर्वत्र क्रियाओं से निवृत हो करके उन्होंने प्रातःकालीन ब्रह्मयाग का अवधान किया। ब्रह्म याग में ब्रह्मचारियों को ब्रह्म की शिक्षा देना और नैतिकता में, ब्रह्म में परिणित कराना यह उन दोनों का कर्त्तव्य था। ब्रह्म ज्ञान दे करके उसके पश्चात देव पूजा में परिणित होना और देव पूजा में नाना प्रकार का साकल्य, दुग्ध और घृत के द्वारा वे प्रातःकालीन याग ब्रह्मचारियों के मध्य करते रहे। माता अरुंधति उस याग के पश्चात यह उपदेश देती रही कि हे ब्रह्मचारियों ! यह जो याग है यह आध्यात्मिक और भौतिक वाद दोनों से कटिबद्ध रहता है। याग अपने में

पूर्णता को लिये हुए होता है और याग में आध्यात्मिक वाद और भौतिक विज्ञान, दोनों ही निहित रहते हैं। क्योंकि जितना भी यह संसार है, जब इस संसार से याग की प्रभा अथवा याग चला जाता है तो इस संसार का क्रिया कलाप नग्न हो जाता है। नग्न होने का अभिप्राय है कि अज्ञान आ जाता है और अज्ञान के आ जाने से मानव अपने में ही मृत्यु को प्राप्त होता रहता है। माता अरुंधति का यह उपदेश प्रारम्भ रहता।

ब्रह्मचारियों के मध्य में, वशिष्ठ मुनि महाराज विद्यमान हैं और भी नाना आचार्यजन विद्यमान रहते परन्तु माता अरुंधति का नित्य प्रति यह उपदेश होता रहा कि हे ब्रह्मचारियो यह जो तुम्हारा शरीर रूपी यज्ञशाला है, यह बाह्य जगत की जो जगत यज्ञशाला है, उन दोनों का एक दूसरे से समन्वय होना चाहिये, दोनों का मिलान होना चाहिये क्योंकि तुम्हे गारपथ्य अग्नि को लेकर गमन करना है और गृहस्थी को गृहपथ्य नाम की अग्नि को लेकर गमन करना है और वाणप्रस्थी को आव्हनीय नाम की अग्नि को लेकर गमन करना है। गमन का अभिप्राय यह है कि गवनम् ब्रह्माः कृतम देवत्वाम् ब्रह्मेः मानो इस प्रकार की अग्नि का तुम व्यव्हान करो जिससे तुम्हारे जीवन में अग्नि प्रदीप्त हो करके, अग्नि नामाम् ज्ञानाम् भूतम ब्रह्मेः व्रणस्सुतं, यह ज्ञान रूपी जो अग्नि है यह तुम्हारे अंतर्हृदयों में जागरूक होनी चाहिये। माता अरुंधति ने कहा कि यह जब जागरूक होगी जब तुम याग करोगे और भौतिक याग का आध्यात्मिक याग से जब मिलान होगा तो तुम्हारे दोनों प्रकार के यागों का व्यवधान हो जायेगा। जैसे ज्ञानी है और कर्मकांडी है, मानो कर्मकांड और ज्ञान के अनुसार जब कर्म बन जाता है, कर्मकांड की प्रतिभा रहती है, दोनों पक्ष मानो श्रेष्ठ बन जाते हों, विशाल अग्नि प्रदीप्त हो करके तुम्हारे अंतःकरण में जो नाना प्रकार के संस्कार विद्यमान होते हैं, उन संस्कारों को वह धीमी-धीमी अग्नि, ज्ञान रूपी अग्नि बन करके, आव्हनीय नाम की अग्नि बन करके और वह गारपथ्य ग्रणत अग्नि बन करके तुम्हारे अंतःकरण के संस्कार, हृदय रूपी यज्ञशाला में दग्ध होने प्रारम्भ हो जाते हैं।

मेरे पुत्रो देखो ! यह वाक् महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज की देवी अरुंधति उच्चारण कर रही थी और यह उद्गीत गा रही थी कि हे ब्रह्मचारियो तुम्हें गारपथ्य नाम की अग्नि से प्रारम्भ होना है और दक्षिणायन अग्नि को ले करके तुम्हें गृहपथ्य नाम की अग्नि में जा करके शांत हो जाना है। गृहपथ्य नाम की अग्नि को ले कर तुम्हे आव्हनय अग्नि के ऊपर व्यव्हान करना है जिससे उसी में तुम्हारा विश्राम होना चाहिये। मेरे प्यारे देखो, इस प्रकार का जब उसे ज्ञान हो जाता है, इस प्रकार के याग में जब वह कटिबद्ध हो जाता है तो मानो उसका याग ही आसन है और याग ही उसका बिछौना है और याग ही मानो उसका ओढन और पांसे बन करके वह याग में ही परिणित हो जाता है। उसका एक-एक श्वास, ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोया हुआ रहता है, मानो नेत्रों की ज्योति भी याग से पिरोई हुई रहती है तो बेटा वह उस याज्ञिक की माला बन करके, उस माला को धारण करके वह याग में परिणित हो जाता है। मेरे पुत्रो देखो, ब्रह्मचारियों को कहा गया कि हे ब्रह्मचारियों तुम्हें मृत्यु से पार होना है। **मृत्यु से वही पार होता है जिसका आसन और ओढन, याग बन जाता है।** वह यह स्वीकार करता है कि मेरा जो आसन है वह भी देवता ही मेरे निचले भाग में विद्यमान हैं और उर्ध्वा भाग में बृहस्पति मेरा संरक्षण कर रहे हैं और मेरे जो पांसे हैं, मानो मैं दिशाओं के मध्य में विद्यमान हूँ। मेरे पुत्रो देखो, इस प्रकार का व्यवहान करते, विचार करते हुए ऋषि देवी ब्रह्मचारियों को उद्गीत गा रही थी कि हे ब्रह्मचारियो तुम्हे मृत्युंजय बनना है और तुम ब्रह्म याग करते हुए देव याग में परिणित हो जाओ। देव याग ऐसा एक याग है कि राजा भी उसी देवता की कोटी में रहता है, ऋषि भी उसी कोटी में रहता है, एक साधारण प्राणी भी उसी कोटी में रहता है, मानो वह कर्त्तव्यवाद की आभा में निहित हो जाता है।

मेरे प्यारे देखो, धर्मम् ब्रह्माः वर्तम्, धर्म कहते हैं धारण करने को और कर्त्तव्यवाद कहते हैं अपनी सारी मौलिक जो आत्मा की प्रतिक्रिया है,

उसको जानने का नाम ही कर्त्तव्यवाद है। जैसे सूर्य अपने में प्रकाश दे रहा है, वह अपने कर्त्तव्य में इतना पारायण है कि अंधकार को निगलता चला जाता है और जो अंधकार को निगलता चला जाता है वही तो सूर्य है। चन्द्रमा इतना चन्द्रव्रत कहलाता है कि वह भी अंधकार को, रात्रि को अपने में संभोग करने लगता है और रात्रि को प्रकाश में परिवर्तित कर लेता है। इस प्रकार का ज्ञान, इस प्रकार का आत्मा का प्रकाश जब योगेश्वर को हो जाता है, साधक को हो जाता है तो मेरे प्यारे, वह रात्रि को भी प्रकाश में परिवर्तित करता है, दिवस भी उसके लिये प्रकाशमय है। मानव को ज्ञान का अभाव नहीं होना चाहिये। वेद मंत्र कहता है कि ज्ञानाम् जन्म ब्रह्मः वरुणम् ब्रह्माः, ज्ञान कहते हैं जानने का नाम और जिस वस्तु को तुम वेदयुक्त जानोगे, उसका ज्ञान होना, उसके अनुसार क्रियाकलापों में परिणित होने का नाम ही देखो, तुम्हारा वस्त्र कहलाया जाता है।

मेरे पुत्रो देखो ! इस प्रकार जब ऋषि देवी ने वशिष्ठ मुनि की आज्ञा से अपने ब्रह्मचारियों के मध्य में यह उपदेश दिया तो राजा रघु उन याज्ञिक विचारों को अपने में श्रवण कर रहा था। वे बोली कि हे ब्रह्मचारियो, अमृताम ब्रह्मणे यजानाम् ब्रव्हे देवम राजाः, देखो अजामेघ जो याग करता है, वह राजा करता है। मानो देखो, राजा वही याज्ञिक होता है जो अपनी प्रत्येक इन्द्रियों को कर्त्तव्य में परिवर्तित कर देता है, प्रत्येक इन्द्रिय कर्त्तव्य का अवृत करने लगता है, उस राजा को अश्वमेघ याग का और अजामेघ याग का अधिकार होता है और जो देवताओं की पूजा करता है और एक देवता का व्यवधान करता हुआ राजा अपने राज्य में वृष्टि याग करना चाहता है तो वह मंत्रों के द्वारा इन्द्रियों को एकाग्र करता हुआ जब वह प्रकृति के क्षेत्र में जाता है और जब वह अश्वमेघ याग कराता है तो वृष्टि का व्यवधान बन जाता है। विचार आता है कि उन्होंने कहा, राजा वही है जो मृत्यु से पार होता है। मेरे प्यारे, **मृत्यु से पार वह होता है जिसका जीवन**

याज्ञिक होता है, जो अपने शरीर को यज्ञशाला के रूप में स्वीकार करता है। जैसे माता का जीवन याज्ञिक माना गया है। संतान को जन्म देना चाहती है, वह उसमें पुत्रेष्टि याग अथवा संतानाम् भूतम ब्रह्मे: याग करती है और याग करके जो अपना संकल्प करती है वही अपने में ग्रहण करने लगती है तो वह यज्ञशाला है। इसी प्रकार यज्ञम् भूतम् ब्रह्मा:, राजा को भी अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाने के लिये याग में परिणित होना चाहिये।

मेरे पुत्रो ! मुझे स्मरण आता रहा है कि राजा रघु इस विचारों को श्रवण कर रहे थे। माता अरुंधति यह उद्‌गीत गा रही थी कि हे ब्रह्मचारियों, यदि राजा इस प्रकार का याग करता है तो राष्ट्र पवित्र बनता है, समाज में पवित्रता का एक स्रोत बहने लगता है। इसी प्रकार तुम अपने याग को, अपने जीवन में, अपने से दूरी नहीं करना। देखो, राजा इन वाक्यों को श्रवण कर रहे थे। उनकी उपदेश मंजरी प्रारम्भ हुई कि तुम्हारा जीवन यज्ञशाला है, इस यज्ञशाला में जो तुम्हारी पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां हैं वे होता बनी हुई हैं और दस प्राण भी होता हैं और इसी प्रकार मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार वे तलहटियों में रहने वाले कर्म की आभा कहलाती हैं और उनके द्वारा ये चौबीस होता स्वत: बन करके याग आत्मा के समीप जाना चाहते हैं। मेरे पुत्रो ! माता अरुंधति ने इसके साथ अपने वाक्यों को समाप्त कर दिया। इसके पश्चात राजा, माता अरुंधति और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और महर्षि व्रेष्टकेतु अपने में विचार विनिमय करने लगे। जब यह विचाराम भूतम ब्रह्मणा लोकाम वाच प्रवाह लोक: व्रते, मेरे पुत्रो, जब वे इस प्रकार की आभा में परिणित हो गये तो राजा ने नत मस्तक होकर कहा कि प्रभु मैं यह संकल्प करने लगा हूँ कि मैं अपने राष्ट्र में सर्वस्व याग करना चाहता हूँ। मेरे कोष में जितना भी द्रव्य है, मैं सर्वत्र का याग करना चाहता हूँ। मेरे प्यारे देखो, उस समय महर्षि वशिष्ठ मुनि बोले कि हे राजन् तुम सर्व याग तो करना चाहते हो परन्तु जो राजा का द्रव्य होता है, वह प्रजा का द्रव्य होता है। यदि किसी प्रजा ने यह प्रश्न कर दिया कि इस द्रव्य का

तुम्हें याग में परिणित करने का क्या अधिकार है तो राजा ने कहा कि द्रव्य भी राष्ट्र का है, प्रजा का है और याग भी प्रजा का है। याग और प्रजा, हम सब मिल करके परमात्मा की धरोहर हैं। राजा का जब यह उत्तर मिला तो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज मौन हो गये। उन्होंने कहा कि राजन् तुम्हें धन्य है।

मेरे प्यारे विचार आता है कि द्रव्य किसका है तो द्रव्य तो प्रभु की धरोहर है और मानव भी प्रभु की धरोहर है परन्तु यदि एक दूसरे के पूरक बन करके हम परमात्मा के समीप जाना चाहते हैं तो वही याग हमारे लिए एक महानता का, गुणगान का एक स्वरूप बन जाता है। आओ मेरे प्यारे, आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करना नहीं चाहता हूँ, विचार विनिमय केवल यह है कि राजा ने जब इस प्रकार अपने वाक्यों का उद्गीत गाया तो मेरे पुत्रो, मुझे स्मरण है कि वह सब सभा ब्रह्मचर्य सहित, अपने में मौन हो गई और राजा ने इस वाक्य को स्वीकार किया कि अमृतम यागाम भूतम, मैं सर्वत्र याग करूँगा। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा कि तुम्हारे राष्ट्र में जितने ऋषि हैं, बुद्धिमान तपस्वी हैं, उनकी एक सभा बननी चाहिये और सभा में विद्यमान हो करके विचार विनिमय हो। जितनी बुद्धिमता देवियां हैं और बुद्धिजीवी है उनकी भी इस सभा में उपस्थिति होनी चाहिये और विचार विनिमय हो करके याग होना चाहिये। राजा ने कहा बहुत प्रियतम। मेरे पुत्रो, विचार विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देवत्व की धारणा में अपने में अपने को ले जायें, हम स्वयं अपने को धारयामि बनायें जिससे हमारे जीवन में एक महानता का दर्शन हो।

आज मैं कोई विशेष विचार देना नहीं चाहता हूँ कल मुझे समय मिलेगा तो मैं देखो, वशिष्ठ मुनि के आश्रम में जो राज्य सभा हुई उसकी चर्चायें कर सकूँगा। आज का विचार तो केवल यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार

सागर से पार होने का प्रयास करें। परमपिता परमात्मा की महती, आध्यात्मिक और भौतिकवाद दोनों याज्ञिक बन करके मेरे पुत्रो, हम संसार में कल्याण के मार्ग को प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि जब हम परमात्मा को एक-एक कण-कण में दृष्टिपात करेंगे तो हमारा जीवन उससे कटिबद्ध रहता है। परमात्मा सूत्र है और हम सर्वत्र उसके मनके हैं विचार भी एक मनका है, मन भी एक मनका है जैसे आत्मा से पिरोये हुए जो जगत्याम् ब्रूणम ब्रव्हा कृदम, मानो यह सर्वत्र एक दूसरे में पिरोया हुआ जगत दृष्टिपात आता है। हम परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते हुए और देव की महिमा का गुणगान गाते इस संसार सागर से पार हो जायें।

मेरे पुत्रो देखो, प्रातःकालीन ब्रह्मचारियों को नैतिक शिक्षा होनी चाहिये जो विद्यालयों में प्रदान की जाती है। जिसमें आचार्य, विवेकी पुरुष विद्यमान हो करके अपने विचारों में विचारणीय प्रश्नों को, विचारों को ले करके उनको विचारवान बनाते हैं, ब्रह्मचरिष्यामि की चर्चायें करते हैं। जितना भी यह जड़ जगत और चेतन्य जगत है उस सर्वत्र जगत में परमपिता परमात्मा निहित रहते हैं। परमात्मा के ऊपर हमारा विश्वसनीय विचार और विश्वास होना चाहिए जिससे हम अपने जीवन में सूत्र स्वीकार करके स्वयं अपने को मनका स्वीकार करके हम माला के वृत बन जायें। यह है बेटा ! आज का वाक्। आज के वाक् उच्चारण करने का अभिप्राय क्या कि राजा अपने राज्य का निरीक्षण और कर्त्तव्य पालन करे क्योंकि कर्त्तव्य ही मानव को सजातीय बनाता है। कर्त्तव्य ही राष्ट्र को प्रकाशमान बनाता है, कर्त्तव्य ही विद्यालयों को ऊँचा बनाता है, कर्त्तव्य ही राष्ट्रीय सम्पदा को ऊँचा बनाता है। हम परमपिता परमात्मा को अपने में याज्ञिक स्वीकार करें। कल मैं राजा रघु के याग की चर्चायें करूँगा क्योंकि उनके यहाँ सभा में विद्वानों का समूह एकत्रित हुआ और उन्होंने किस-किस प्रकार का अपना विचार दिया है यह चर्चायें मैं कल प्रकट करूँगा। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

महाराजा रघु का याग-२

देखो मुनिवरो, आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रो का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ यह पाठ्य कर्म परम्परागतों से ही विचित्रतव माना गया है जिसके उपर हमारे यहाँ ऋषि मुनि और महापुरुष अपनी साधना में परिणित रहे हैं और एक-एक वेद मंत्र को लेकर उन्होंने अनुष्ठान किया और उसी अनुष्ठान के ऊपर अपने जीवन और प्रतिभा को उसमें प्रतिष्ठित किया जिससे मानव का जीवन तपोमय हो जाये। परमात्मा का जो अनंतमयी ज्ञान है उसमें वृद्धपन नहीं आता वह सदैव नवीन बना रहता है इसीलिये वेदों का ज्ञान सदैव नवीन रहता है उसमें वृद्धपन नहीं आता। सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके सृष्टि के अंत परिणाम तक वह ज्ञान एक ही सुर में, एक ही आभा में, एक ही साधना में परिणित रहा है। इसीलिये हमारा वेद का मंत्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा, उसकी महिमा का वर्णन करता रहता है क्योंकि वह सदैव नवीन रहता है उसमें नवीनतम भी रहता है क्योंकि आत्मा का जो ज्ञान है, आत्मा की जो प्रतिक्रियाएं है वे मानवीय जीवन में क्या, किसी भी प्राणी के प्राणत्व में सदैव एक रस बनी रहती हैं। मुनिवरो, इसीलिये हम परमपिता परमात्मा और उसकी महिमा का सदैव गुणगान गाते रहते हैं।

ऋषि मुनि जब भी अपनी-अपनी स्थलियों पर विद्यमान रहे हैं उसी काल में उन्होंने एक ही वाक्य को अपना विचारणीय विषय बनाया है कि मानव मृत्यु से पार कैसे होता है क्योंकि मृत्युंजय बनने के लिये प्रत्येक मानव

की उत्कट इच्छा बनी रहती है और वह सदैव यही चाहता है कि मेरी मृत्यु नहीं होनी चाहिये। परन्तु विचार-विनिमय यह करना है कि वेद का मंत्र यह कहता है कि हे मानव जिस मृत्यु को तू पुकार रहा है, हमारे वैदिक साहित्य में, वेद की प्रतिभा अथवा उसकी भाषा में मृत्यु कोई शब्द नहीं होता है क्योंकि मृत्यु अज्ञान है, इसीलिये वेद नाम प्रकाश का है, इसीलिये उसकी प्रतिभा में मृत्यु का शब्द नहीं आता। क्योंकि वेद जीवन है, ज्ञान है तो हमें जीवन को प्राप्त करने के लिये सदैव प्रयत्न करना चाहिये और जीवन को सदैव बनाये रहना चाहिये। वह एक रस बना रहे जैसे सूर्य प्रातःकाल में उदय होता है और वह प्रकाश को ले करके आता है, वह उर्जा ले करके आता है चाहे उस उर्जा में मानव तपायमान हो जाये चाहे पृथ्वी तपायमान हो जाये चाहे और भी लोक-लोकान्तर उसमें तपायमान होते रहते हैं। नाना वनस्पतियां उसी में प्रकाश को प्राप्त करती हैं, अपने में ओजस बन जाती हैं, वे प्राणवर्धत्व को प्राप्त कर लेती हैं। परन्तु विषैले प्राणियों पर भी वही उर्जा अपना क्रिया कलाप कर रही है और वही मानव के तन में भी उसी प्रकार का क्रिया कलाप हो रहा है।

विचार आता रहता है कि परमपिता परमात्मा का जो ज्ञान और विज्ञान है वह मृत्यु से रहित है। मृत्यु उसके संवृत्तियों में नहीं आती और प्रत्येक मानव मृत्यु को इसलिये पुकारता रहता है क्योंकि उसका अध्ययन नहीं है। वह अपना आत्मचिंतन नहीं कर रहा है। जो आत्मा हमारे शरीर में वास कर रहा है, अरे भोले प्राणी, उसका ही हमें प्रतीत नहीं कि वह कितना विशाल है, कितना महान है, उसी के ऊपर विचार-विनिमय नहीं कर रहे हैं तो इसीलिये हमें अज्ञान ही अज्ञान व्यापता रहता है। हम आत्म चिंतन करें और आत्मा के लोक में प्रवेश करने का प्रयास करें क्योंकि लोक तो सर्वश्रेष्ठ आत्मा का एक ही माना गया है। आत्मा का लोक क्या है ? बेटा, मैने कई कालों में वर्णन किया है कि **आत्मा का लोक यह पंचमहाभूत माना**

गया है। इसका जितना भी ज्ञान और विज्ञान, तरंगवाद है वह सब आत्मा से प्रेरणा लेकर प्रेरित होती रहती है या उसके अवृत्तियों में रत्त रहने वाली हैं। तो इसीलिए आत्माम् भूतम ब्रह्माः वरण स्वहे, आत्मा के लोक में जाने का प्रयास करो क्योंकि यह जो तुम्हारा लोक है यह आत्मा में जाने का उपग्रह माना गया है। आओ मेरे प्यारे, इस सम्बन्ध में कोई चर्चा तुम्हें विशेष नहीं केवल यह कि हमारे यहाँ जो वेदो का पठन-पाठन होता है, उस पठन पाठन की पद्धत्ति में भिन्न-भिन्न प्रकार से वेदों का उद्गीत गाया जाता है। वह वेदों का उद्गीत कहीं जटापाठ में, कहीं घनपाठ, कहीं मालापाठ, कहीं विसर्ग पाठ, कहीं उदात्त और अनुदात में वेदों के स्वरों का सुर अव्यंजन होता रहता है। विचार आता रहता है कि मानव जब इन नाना प्रकार के स्वरों को जानने लगता है तो उसकी स्वर ध्वनि पवित्र हो जाती है तो बाह्य जगत में जो ध्वनियां अपने में ध्वनित हो रही है वह उन्हें ग्रहण करने लगता है और अपने में नाना प्रकार का अनुष्ठान करके मृत्युंजय बनने का प्रयास करता है।

आओ मेरे पुत्रो देखो, आज का विचार क्या कि प्रत्येक मानव के ह्रदय में यही आकांक्षा लगी रहती है कि मैं मृत्यु को न प्राप्त हो जाऊँ। मेरे प्यारे देखो, मृत्युंजयम् ब्रह्माः, जो जान लेता है वह जो जानम् ब्रह्माः कृत्तम् देवहा, जो आत्मा के रहस्यों को जानता है, पंचमहाभूतों के रहस्यों को जानता है, वह ज्ञानी है। उस ज्ञान के अनुसार वह क्रिया कलाप करता है तो वह महाव्याहृतियों में रत्त हो करके पार होने का प्रयास करता है। वह दोनों से उपराम हो जाता है। विचार-विनिमय क्या मुनिवरो, आज का हमारा वेद मंत्र कहता है कि हे मम् ब्रह्मा क्रणम ब्रव्हे देवत्वाम् लोकाम हिरणयम् वृथाः, वह जो परमपिता परमात्मा है वह हिरणयम् ब्रहे, मानो सर्वत्र जगत उसमें ओत-प्रोत रहता है, उसी में निहित रहता है तो उसको हमें जानने का प्रयास करना चाहिये। मेरे प्यारे, आज का हमारा वेद मंत्र जहाँ यह

कहता है कि मानव को उद्गीत गाना चाहिए वहाँ वेद का मंत्र यह कहता है, संभूति ब्रह्मणा लोकाम् वाचस्सुतम, वे मानम् ब्रह्मेः, वह परमपिता परमात्मा वाच सस्वत कहलाता है तो इसीलिए हमें अपने वाचों से, वाक्यों से वच्चम्ते, हम उसको ग्रहण नहीं कर सकते, वे स्वयं उसको अपने में अनुभव ही कर सकते हैं। तो विचार आता रहता है कि हमें वेदाम् भूतम ब्रह्माः हमें अपने में ज्ञान और विज्ञान की उर्ध्वा में उड़ान उड़नी चाहिये।

मेरे प्यारे देखो, आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है, आमम् ब्रव्हे देखो, आज मैं तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ मैंने कल अपने विचारों को शान्त किया था। राजा रघु के राष्ट्र में और राजा रघु के हृदय में जो प्रेरणा का स्रोत्र जागृत हुआ प्रायः उसकी चर्चा चल रही हैं कि राजाओं के हृदय में नाना प्रकार की प्रेरणा आती रहती हैं। प्रत्येक मानव के हृदय में वही प्रेरणा का स्रोत्र बना रहा है जो उसके अंतःकरण में संस्कार हैं और मानव को कोई संस्कारिक प्राणी प्राप्त होता है तो वे संस्कार उद्बुद्ध हो जाते हैं और उन संस्कारों के उद्बुद्ध होने से वही संस्कार को अपने में धारण करने लगता है। विचार आता रहता है कि महाराजा रघु जब माता अरुंधति की चर्चाओं को श्रवण कर रहे थे तो उन्होंने यह संकल्प किया और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज से कहा कि महाराज मैं अमृतम् ब्रह्मेः देखो, मैं अमृता व्रतेः, मैं एक सर्वांग याग करना चाहता हूँ। जितना मेरे कोष में द्रव्य है, वह द्रव्य ब्रणम ब्रहे, उस सर्वत्र का याग करना चाहता हूँ। महात्मा वशिष्ठ ने कहा कि इसमें ब्रह्मवेत्ताओं और ऋषि मुनियों की एक सभा होनी चाहिये क्योंकि वे जो विवेकी पुरुष हैं वे तुम्हें उर्ध्वा का मार्ग उद्गीत रूपों में गान गायेंगे और उसके अनुसार तुम्हें क्रिया कलापों को करना है। तो मेरे प्यारे, राजा रघु ने सर्वत्र राष्ट्र के जितने प्रतिष्ठित महापुरुष थे अथवा बुद्धिमान ओर वेदज्ञ थे, उन सबको निमंत्रित किया। उन्होंने हिमालय कक्ष में रहने वाले महाराजा शिव को भी निमंत्रित किया। वह सभा हुई और उस सभा में नाना ऋषिवर विद्यमान थे, जैसे महर्षि प्रव्हाण,

महर्षि शिलक, महर्षि दालभ्य, महर्षि व्रेणकेतु, महर्षि भारद्वाज, महर्षि पारेत्व ऋषि और पणपेतु, ब्रह्मचारिणी शबरी, अम्रेतकेतु ऋषि महाराज, महर्षि वशिष्ठ, विश्वामित्र और भी नाना ऋषिवर विद्यमान जैसे ऋषि लोमश और महर्षि विभांडक और काकभुषुंड इत्यादि नाना ऋषि मुनियों को उन्होंने निमंत्रित किया। निमंत्रित करने के पश्चात् वह सभा एकत्रित हो गई।

जब वह सभा एकत्रित हो गई तो वशिष्ठ ने कहा कि सभा में किसी प्रधान सभापति की आवश्यकता है, उसमें निर्वाचन होना चाहिये जो अपना निर्णय दे सके कि देखो क्या विचार हैं। उसमें अरुंधति का नामोकरण आया। अरुंधति ने कहा कि मैं इस सभा में उपस्थित हूँ परन्तु मैं इसका संरक्षण नहीं कर सकती। मंगलम ब्रह्मेः वर्णम् ब्रव्हे, महाराजा शिव से यह प्रार्थना की गई कि महाराज आईये तो महाराजा शिव ने कहा कि नहीं यह ब्रह्मवेत्ताओं का समाज है, इसमें ब्रह्म चिंतन होना है और महात्मा कुबेर इत्यादि सब इस सभा में विद्यमान हैं। मेरे पुत्रो देखो, मुझे स्मरण आता रहता है, महात्मा विभांडक मुनि महाराज ने कहा चलो आज तो सभा में उपस्थित होंगे तो महर्षि याज्ञवल्क्य और महर्षि भारद्वाज दोनों अपने में भौतिक और आध्यात्मिक विज्ञान में पारायण थे। सभा में नाना ब्रह्मवेत्ता विद्यमान हैं तो महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज से यह प्रार्थना की कि भगवन् आईये आप सभा का सभापतित्व शोभित कीजिये तो महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज ने उस सभा को संबोधित करते हुए कहा कि धन्यम् ब्रह्माः, हे ब्रह्मवेत्ताओं यदि किसी को कोई उद्‌गीत गाना है या किसी प्रकार का द्वेषारोपण किसी ब्रह्मवेत्ता के हृदय में हो तो उसको अभी उद्‌गीत गाओ, मैं इस सभा का सभापतित्व जभी अपने में संरक्षणम् ब्रह्माः, इसको ग्रहण करूँगा जबकि सबकी सुमति होगी।

मेरे पुत्रो, इसमें महर्षि जालवी ऋषि ने एक वाक्य कहा कि महाराज आप सभापति क्यों बन रहे हैं। उन्होंने कहा कि मैं सभापति इसलिये बन

रहा हूँ कि एक संरक्षण की आवश्यकता होती है और वह बुद्धिमानों की बुद्धि को प्रखर करता हुआ अपना मंतव्य देवे, ऐसा मेरा विचार है। जालवी ऋषि ने कहा कि महाराज आप इतने उर्ध्वा में ब्रह्मवेत्ता हैं कि दूसरे ब्रह्मवेत्ताओं की बुद्धियों का मापदंड आप के समीप है। तो उन्होंने कहा नहीं, मापदंड नहीं है, वह तो जितना भी मेरे विचार में आयेगा उसी के अनुसार मैं उन क्रियाकलापों को अवश्य कर पाऊँगा। अपने विचारों को व्यक्त करूँगा परन्तु जितना भी मेरा ज्ञान सीमित है या असीमित है इसके उपर कोई विचार विनिमय नहीं परन्तु केवल यह कि जितना भी मेरे से बन पायेगा उतना उत्तर दे सकूँगा। मेरे प्यारे देखो, जालवी ऋषि ने कहा प्रभु तो फिर आप सभापति क्यों बन रहे हैं ? उन्होंने कहा कि सभापति इसलिये कि यहाँ याग का निर्णय होना है। उन्होंने कहा यहाँ महर्षि विभांडक हैं, शृंगी हैं जो इस याग के प्रकरण को जानते हैं, जिन्होंने बड़ा अध्ययन किया है। यह मानते हैं कि आप ब्रह्मवेत्ता हैं परन्तु ब्रह्मवेत्ता, ब्रह्मणम् ब्रहे व्रत्तम, देखो, मानव का जीवन सीमित रहता है और तुम्हारा जीवन मृत्यु से पार हो गया है, इसलिये हम आपको ब्रह्मवेत्ता कह सकते हैं परन्तु जहाँ तक कर्मकांड का प्रसंग है वहाँ वायु मुनि महाराज विद्यमान हैं, ये कर्मकांड में बड़े पारायण है और महर्षि शृंगी हैं जिनके जीवन में सदैव कर्मकांड का वृत्त उनके हृदय में सदैव पनपता रहता है। तो क्या हे प्रभु आकम ब्रह्मेः, उन्होंने कहा कि मैं कर्मकांड के लिए भी राजपुरोहित हूँ और पुरोहित के नाते ही इस राष्ट्र में मैं रहता हूँ। ब्रह्म के उपर मेरा कोई विचार विनिमय नहीं परन्तु राजा के राष्ट्र में मैं इसका सभापति बनना चाहता हूँ, अमृतम् ब्रह्मेः वर्णस्सुतम देवत्वाम् ब्रहे, क्योंकि यह राष्ट्र पुरोहित का कर्त्तव्य कहलाता है। आप मेरे अतिथि हो और राज का यह कर्त्तव्य है कि उसे सभापति बनायें जो उस राष्ट्र में वृत्त रहने वाला हो। मेरे प्यारे देखो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के इन वाक्यों को पान करके जालवी अपने स्थान पर विद्यमान हो गये। मेरे पुत्रो देखो, सभापतित्व का निर्वाचन हुआ, सर्वत्र ब्रह्मवेत्ताओं ने, कुछ

ब्रह्मचारियों ने उनका समर्थन किया और वे अपने स्थान पर विद्यमान हो गये।

आसन पर विद्यमान हो करके ब्रह्मवेत्ताओं ने कहा कि इस सभा में क्या प्रसंग है। राजा रघु ने कहा हे प्रभु, मेरी इच्छा ऐसी जागरूक हुई है कि मैं सर्वांग याग करना चाहता हूँ जो सर्वत्र प्राणियों का हितवर्धक हो। उन्होंने कहा बहुत प्रियतम। मेरे प्यारे, महात्मा जालवी जी उपस्थित हुए और उन्होंने राजा से प्रश्न किया कि हे राजन् राजा तो राष्ट्र का अध्वर्यु होता है और आप राष्ट्र के अध्वर्यु होने के नाते तुम्हारे हृदय में याग की प्रेरणा कैसे जागरूक हुई है। उन्होंने कहा प्रभु देखो, राष्ट्र का कर्त्तव्य है, राजा का यह कर्त्तव्य है कि राजा के राष्ट्र में विचारों की सुगंधि होनी चाहिये। वेद मंत्रो की धारा पर जो यज्ञशाला का सुगंधि वृत्त है, अग्नि की धाराओं पर शब्द और चित्र और उन सबकी जो ध्वनि है वह द्यौ में प्रवेश कर जाये, ऐसा हमारा विचार है। हे ब्रह्मणेः व्रणम ब्रह्म, मुनिवरो जब इस प्रकार जालवी के प्रश्नों का उत्तर राजा ने दिया तो जालवी ने राजा से कहा हे प्रभु , **याग तो वह अनुष्ठानी करता है जिसकी इंद्रिया उसके वश में हो गई हों।** उन्होंने कहा प्रभु मेरी इंद्रिया तो इतनी वश में नहीं हैं परन्तु जितना भी मैं जानता हूँ उतना ही इंद्रियों के उपर संयम करने का सदैव प्रयास करता रहता हूँ। मेरे पुत्रो, जालवी इस बात पर प्रसन्नम् ब्रहे, वे अपने स्थान पर विद्यमान हो गये तो राजा ने उनसे कहा कि हे प्रभु मैं आप से कोई विशेष प्रश्न नहीं ले कर चला हूँ , केवल मैं यह जानने के लिये कि मुझे सर्वांग याग करना चाहिए या नहीं करना चाहिए। उन्होंने कहा कि मैं इसका स्पष्टीकरण चाहता हूँ।

महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज ने सबसे प्रथम महर्षि जालवी से यह प्रश्न किया कि आप अपने विचार दो। महात्मा जालवी उपस्थित हुए और कहा हे प्रभु, मेरे विचार में तो राजा को याग करना चाहिए। क्योंकि राजा

याज्ञिक होगा तो यह प्रजा भी याज्ञिक होगी। इंद्रियों पर संयम करने वाला राजा ही याग कर सकता है और गायत्री छंदों में रमण करने वाले को यह अधिकार होता है। मेरे पुत्रो, उन्होंने कहा बहुत प्रियतम मुनिवरो, ब्रह्मणे व्रणहा व्रहे, उन्होंने कहा हम राजा से प्रश्न नहीं करेंगे। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज उसके पुरोहित हैं तो भगवन् हमारा विचार तो यह कि याग होना चाहिए और याग में सुगंध होनी चाहिये परन्तु राजा और प्रजा एक सूत्र में हो और जितने पृथ्वी पर राजा हैं उनका भी एक सूत्र होना चाहिये। उनका यह वाक्य प्रसंगवश, सबके हृदय में समाहित हो गया। जितने भी महात्मा उपस्थित थे उन्होंने विश्वामित्र से कहा, हे विश्वामित्र, तुम अपने जीवन में राजा भी रहे हो, राजर्षि भी रहे हो और अब तुम ब्रह्मवेत्ता की उपाधि को प्राप्त करने के लिये तत्पर हो, अथवा तुम ब्रह्मवेत्ता बन भी गये हो तो आप अपना मंतव्य प्रकट कीजिये।

महर्षि के वाक्यों को पान करते हुए महर्षि विश्वामित्र ने कहा कि राजा को इसलिये याग करना चाहिए कि याग से राजा का आत्मबल बलिष्ठ होता है और जिस राजा का आत्मा बलवती होता है तो राष्ट्र भी बलवती होता है। जिस राजा के राष्ट्र में आत्माम् भूतम, मेरे प्यारे, महात्मा जालवी ने कहा ऋषिवर, क्या उच्चारण करने लगे हो, राष्ट्र का आत्मा क्या है ? उन्होंने कहा कि राष्ट्र का आत्मा राजा है। उन्होंने कहा कि यह आध्यात्मिकवाद है या भौतिकवाद है ? उन्होंने कहा कि यह दोनों का मिश्रण है। उन्होंने कहा कि यह राष्ट्रवाद की चर्चायें हैं। राजा के राष्ट्र का जो आत्मा होता है, वह चरित्र होता है। जिस राजा के राष्ट्र में ब्रह्मचारी होते हैं और ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष होते हैं, जिस राजा के राष्ट्र में देखो, मृणम् ब्रहे, वही राष्ट्र की आत्मा है। राष्ट्र की आत्मा क्या है राष्ट्रम् ब्रह्मेः देखो, विद्या ही राष्ट्र की आत्मा है। उन्होंने कहा जिस राजा के राष्ट्र में बुद्धिमान ब्रह्मचारी होते हैं, विवेकी पुरुष होते हैं, ब्रह्मचारिणी पवित्रता को लिये हुए होती हैं और अपने

में बुद्धिमत्ता होती है वही राष्ट्र का प्राण कहा जाता है। बाह्य जगत का जो राष्ट्र मुझे दृष्टिपात आ रहा है, इसका आत्मा विद्यालय है, इसका जो आत्मा है वह उसका चरित्र है तो देखो, **चरित्र राष्ट्र की आत्मा माना गया है।** विश्वामित्र ने जब यह वांक् श्रवण किया तो विश्वामित्र मौन हो गये। हे जालवी, मुझे तो अपना विचार, अपना मंतव्य कहने दीजिये। जालवी ने कहा उच्चारण कीजिये। उन्होंने कहा यह जो राष्ट्र रूपी यज्ञशाला है, इसका अध्वर्यु राजा कहलाता है क्योंकि वह नाना प्रकार के चरु का स्वामी होता है और चरु का स्वामी होने से ही वह राष्ट्रम् ब्रह्मणेः, वही राष्ट्र का प्राण होता है। जालवी ने कहा ऋषिवर क्या उच्चारण कर रहे हो देखो, यह जो द्रव्य है यह राष्ट्र का प्राण नहीं होता। राष्ट्र का प्राण होता है गति, राष्ट्र का प्राण होता है विज्ञान, राष्ट्र का प्राण है कि विज्ञान का दुरुपयोग नहीं होना चाहिये। जिस राजा के राष्ट्र में विज्ञान पनपता रहता है, वैज्ञानिक पुरुष होते है और विज्ञान का जहाँ दुरुपयोग नहीं होता है वह विज्ञान ही राष्ट्र का प्राण कहा जाता है, वही राष्ट्र का द्रव्यत्व कहा जाता है। इस प्रकार द्रव्य का स्वामी तो यह पृथ्वी मानी गई है, द्रव्य का स्वामी तो राजा के राष्ट्र में कृषक समाज होता है और यह जो मृतम् देखो, राष्ट्रम् ब्रह्मेः राष्ट्र अध्वर्यु के रूप में नहीं माना गया है। परन्तु मेरा विचार तो यही कहता है कि राष्ट्र का जो प्राण है, राष्ट्र की जो प्रतिभा है वह राष्ट्र में, उर्ध्वा में विज्ञान की गति होनी चाहिये। जब राजा के राष्ट्र में पृथ्वी के मंडल से ले करके अरुंधति मंडल तक और ध्रुव मंडल तक एक प्रकार का तारतम्य लग जायेगा और इतना निकट समाज आ जायेगा कि एक चंद्र, एक मंगल मंडल का प्राणी है उनका पृथ्वी के प्राणियों से मिलन हो जाये और मंगल का वैज्ञानिक जब शुक्र में चला जाता है, शुक्र में परिणित हो जाये तो उसका नाम प्राण माना गया है। यह राष्ट्र का प्राण है जो हमारा यातायात इतना उर्ध्वा में गति हो जाये।

मेरे पुत्रो देखो, जालवी ऋषि महाराज ने विश्वामित्र के वाक्यों को शांत कर दिया। उनसे यह प्रश्न किया गया कि महाराज अमृतम् ब्रह्मेः उद्गम ब्रव्हे व्रणम, कि राजा इस राष्ट्र का उद्गाता है, उद्गीत गाने वाला है। उन्होंने कहा नहीं, उद्गीत तो ब्राह्मण गाता है, उद्गीत तो ब्राह्मण ही गाता है, ब्रह्मणम् ब्रहोः, जो अपनी ब्रह्म हत्या नहीं होने देता है समाज में, मानो देखो, वह ब्राह्मण ही उद्गीत गाता है और वही उद्गाता कहा जाता है जिसका आत्मा, ब्रह्मणम् ब्रह्मेः जो ब्रह्म हत्या नहीं होने देता वह ब्राह्मण है। ब्रह्म हत्या किसे कहते हैं ? वेद के ऋषि ने उत्तर देते हुए कहा कि देखो ब्रह्मणम् ब्रह्मेः वर्त्तम देवत्वम् ब्रव्हा आत्माम भूतम; मानो, **जो आत्मा की प्रेरणा को दमन करता है, आत्मा की प्रेरणा को जो मृतक कर देता है वह ब्रह्म हत्यारा है,** वह ब्राह्मणम् ब्रह्मेः, वह ब्राह्मण उद्गाता के योग्य नहीं कहलाता। जो वह अपनी आत्मा के अनुकूल क्रिया कलाप करता है, उद्गीत गाता है वही ब्रह्म हत्या से उर्ध्वा में उपराम हो जाता है। तो विचार आता है कि बेटा, मैं ब्रह्म हत्या की चर्चा नहीं कर रहा हूँ। ब्रह्म हत्या जिस राजा के राष्ट्र के होती हो या राजा करता हो, उस राजा का राष्ट्र एक समय देखो, अग्नि का कांड बन करके रहेगा और देखो जिस राजा के राष्ट्र में ईश्वर के नाम पर नाना प्रकार की रूढ़ियां पनपती रहती हैं और नाना प्रकार की रूढ़ियां हैं वो आत्मा हत्या करती रहती हैं, ब्रह्म हत्या करती रहती हैं तो राजा का राष्ट्र निष्क्रिय हो जाता है।

बेटा, आज इस संबंध में कोई विशेष चर्चा नहीं, देखो, महात्मा विश्वामित्र ने कहा प्रभु मुझे अपने वाक्य उच्चारण करने दीजिये। जालवी ऋषि ने कहा उद्गीत गाईये। महात्मा विश्वामित्र ने कहा, प्रभु, मेरे विचार में तो यह याग होना चाहिये। देखो, अश्वमेध याग करो या सर्वांग याग करो, राजा अपने राष्ट्र की प्रजा देखो, उनकी भावनाओं का याग होना चाहिये। उनके साकल्य और उनका दुरुपयोग नहीं होना चाहिये। ऐसा मेरा मंतव्य

है कि राजा के राष्ट्र में यागाम् भूतम ब्रह्मेः, उन्होंने सर्वांग याग का संकल्प किया है, वह संकल्प पूर्णता को प्राप्त होना चाहिये। आत्मा की प्रेरणा है, आत्मा की प्रेरणा के अनुसार मानव को क्रिया कलाप करना चाहिये। बेटा, महात्मा विश्वामित्र अपने आसन पर विद्यमान हो गये उसके पश्चात् उन्होंने महर्षि विभांडक मुनि से कहा कि महाराज आप बड़े तपस्वी हैं और तपस्या ही इसका निर्णय दे सकती है। विभांडक जी बोले कि मेरे विचार में तो राजा के राष्ट्र में याग होना चाहिये, सर्वांग याग होना चाहिए , द्रव्य तो याग का है और याग द्रव्य का है। दोनों एक दूसरे के पूरक कहलाते हैं क्योंकि याग में जितना साकल्य प्रदान किया जाता है, देवता उससे प्रसन्न होते हैं और जित.ना देवत्व आ जाता है उतनी ही मानव में महानता होती है और जितनी महानता होती है उतना ही राष्ट्र उर्ध्वा को उड़ान उड़ने लगता है। यह वाक्य उच्चारण करके ऋषि अपने आसन पर विद्यमान हो गये।

मेरे पुत्रो, इतने में महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज से यह प्रश्न अम्ब्रहे। उन्होंने कहा कि मेरे विचार में तो यह आता है कि राजा के राष्ट्र में सदैव यागों का व्यवधान होना चाहिए और याग का अभिप्राय यह है कि राजा के राष्ट्र में दुरिता नहीं होनी चाहिए। जब दुरिता नहीं होगी तो यह समाज पवित्र बनेगा, महानता की ज्योति जागरूक हो जायेगी। इसी प्रकार उन्होंने वर्णन करते हुए कहा कि राजा के राष्ट्र में विज्ञान होना चाहिये और विज्ञान उड़ान में उड़ने वाला हो। वही मंगल है, वही ध्रुव है और वही सूर्य मंडल है, वही सूर्य है तो वही मानो देखो ध्रुव कहलाता है, सब मंडलों का तारतम्य होना चाहिये। राजा वह पवित्र होता है जो राजा विष्णु लोक में रमण करने वाला हो। विष्णु ही उसका उद्‌गीत गाता है तो राजा का नाम विष्णु है। जैसे यज्ञ को हम विष्णु रूप देते हैं ऐसे राजा का नाम विष्णु है और वह विष्णु अपने इस यंत्रों में विद्यमान हो करके अपने राष्ट्र में, भूमंडल में भ्रमण करता हुआ वह लोक लोकान्तरों की उड़ान उड़ने वाला हो। ऐसा राजा ही

याज्ञिक होने से विष्णु बनता है। जब उसका याग उर्ध्वा में गमन करता है तो वह लोक लोकान्तरों की उड़ानें उड़ने लगता है। मेरे पुत्रो, इतना वाक्य उच्चारण करके महर्षि विभांडक और भारद्वाज, दोनों परस्पर कुछ विचार विमर्श करते अपने आसन पर विद्यमान हो गये।

मेरे प्यारे देखो, नाना प्रकार का विचार यह हुआ कि याग होना चाहिए। मेरे पुत्रो, सर्वांग याग की भूमिका बनने लगी और सब ऋषि मुनियों ने एक स्वर में यह कहा कि हम वशिष्ठ मुनि महाराज के विचारों को जानना चाहते हैं। सर्वत्र ऋषियों का तो एक ही मत है कि याग होना चाहिए, उद्गीत गाना चाहिए, मानो देखो, उद्गाम ब्रह्मणा उद्गो व्रहे वृत्तम्, क्योंकि राष्ट्र उसी से पवित्र बनता है। तो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा कि मैं यह उच्चारण कर रहा हूँ , वेद कहता है कि सुव्रणम सुव्रतम योगाम भूतम व्रणस्सुतम यज्ञाव्रहे व्रत्ती, कि राजा के राष्ट्र में क्या परमात्मा के राष्ट्र में तो जितना भी क्रिया कलाप हो रहा है, चाहे वह परमाणुओं का आदान-प्रदान हो रहा है, चाहे वह परमाणु सूत्र रूप में विद्यमान हैं, चाहे वह सुगंध रूप में, वे सर्वत्र एक याज्ञिक बने हुए हैं, वे अपने में याग कर रहे हैं, जैसे एक परमाणु दूसरे को निगलता हुआ, त्यागता हुआ, सुगंध देता हुआ अपने में प्राणवर्धक देता हुआ, याग कर रहा है इसी प्रकार राजा को भी अपने राष्ट्र में याग का अधिकार है। याग होना ही चाहिए और याग सदैव होना चाहिये, यह राष्ट्र एक यज्ञशाला है और यहाँ प्रजा अपनी आहुति दे रही है जैसे माता का गर्भाशय एक प्रकार की यज्ञशाला है उसमें मानो सर्वत्र देवता अपनी आहुति देते हैं। जब शिशु पनपता है तो प्रत्येक देवता आहुति दे रहा है। चंद्रमा अपनी कांति दे करके मानो अमृत की आहुति दे रहा है, सूर्य प्रकाश की आहुति दे रहा है, अग्नि उष्णता की आहुति दे रही है और आपोमयी ज्योति उसे शीतलता की आहुतियां प्रदान कर रहा है, पृथ्वी गुरुत्व का मानो देखो, अप्रतम उसमें आभाव न हो जाये, मेरे प्यारे देखो, दिशायें मानो श्रोत्रों

का निर्माण कर रही हैं तो ये तो संसार सर्वत्र एक यज्ञशाला है। मेरे प्यारे देखो, जैसे माता के गर्भाशय में शिशु के प्रवेश होने के पश्चात सर्वत्र देवता याग करते हैं और उसका एक परिणाम बन करके आता है कि मानो शरीर रूपी यज्ञशाला का निर्माण हो जाता है। इसी प्रकार परमपिता परमात्मा ने जब इस संसार का सृजन किया तो सर्वत्र देवताओं का यह समूह बना करके एक प्रकार की यज्ञशाला का निर्माण हुआ। तो मानो, यहाँ याग तो प्रत्येक क्षण में हो रहा है! आज कोई नवीन बात नहीं है कि राजा संकल्प कर रहा है। यहाँ तो प्रत्येक मानव याग कर रहा है। नेत्र मानो सुदृष्टि का याग कर रहा है, श्रोत्र अपने में सुश्रवण का याग कर रहा है, वाणी शब्द उच्चारण करने का याग कर रहा है, घ्राण सत्य सुगंध का याग कर रही है और प्रत्येक इन्द्रियां देखो, त्वचा प्रेमाम् भूतम ब्रह्माः वर्णम्, एक दूसरे का सुघृत बनाती रहती हैं। महात्मा वशिष्ठ ने कहा कि इनसे उपराम, इनको जानने का नाम ही ब्रह्मवेत्ता बनना है इसीलिये याग होना चाहिए।

मेरे पुत्रो देखो, सर्वत्र ऋषि मुनि अपने में बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा धन्य है प्रभु ! तो मेरे प्यारे ऋषि मुनियों का जो अपना मंतव्य रहा है वह बड़ा विचित्र रहा है और बड़ी विचित्रता में यज्ञशाला के निर्माण के लिए ऋषिगण अपनी-अपनी क्रियाओं का वर्णन करने लगे। उन्होंने कहा महाराज सर्वांग याग किसे कहा जाता है ? उत्तर दिया कि सर्वांग याग उसे कहते हैं जो राजा की प्रत्येक भावना उसमें परिणित हो जाये, प्रत्येक इन्द्रियां उसमें संलग्न हो जाये और उसका एक साकल्य बनायें तो आध्यात्मिक रूप बनता है और राजा के राष्ट्र में इतना द्रव्य है, भौतिक रूप में यह पंचमहाभूतों का जो साकल्य है, यह साकल्य नहीं बन पाता है परन्तु देखो यह कदापि नष्ट नहीं होता तो उसको हम सर्वांग नहीं कह सकते। सर्वांग उसे कहते है कि द्रव्य जितना भी राजा के द्वार, जितना भी अपनापन है उस अपनेपन का साकल्य बनाया जाये और राजा की प्रत्येक इन्द्रियां उस द्रव्य, उस याग

में परिणित हो जाये, संलग्न हो जाये, मेरे पुत्रो, उसे सर्वांग याग कहा जाता है। सर्वांग याग का अभिप्राय यह कि जितना मेरे द्वार द्रव्य है उस द्रव्य का मैं याग कर रहा हूँ। देखो वह सर्वांग याग तो होता ही नहीं क्योंकि द्रव्य देते रहते हैं सूर्य, अपनी किरणों के द्वारा उर्जा देता है वह उसका द्रव्य है क्योंकि उससे स्वर्ण की धातु का जन्म होता है, जल को शक्तिशाली बनाया जाता है, रत्न और परमाणुओं का निर्माण होता है, देखो, स्वर्ण के परमाणु एक दूसरे में रत्त रहते हैं तो द्रव्य का सर्वांग याग कैसे करोगे। अभिप्रायः यही है कि जितना उसके द्वार अपनापन, जिससे अपनेपन का स्वाभिमान है, सुव्रत्तम है मानो, उसका वह याग कर रहा है। अरे मानव तेरा जो सर्व स्वाभिमान है, वह तेरी इन्द्रियों का नृत्त है, तेरी इन्द्रियां कर्म, वचन या मन मस्तिष्क सब एक सूत्र में रहनी चाहिये। जब तू याग में परिणित होता है तो तेरा याग मन, मस्तिष्क, मन, वचन और कर्म जब एकाग्र होंगे और द्रव्य के त्याग में तेरी प्रवृत्ति रहेगी और देवताओं को तू प्रसन्न करता रहेगा तो तेरा जहाँ तक विचार, तेरा चित्र, जहाँ तक तेरी प्रतिभा जायेगी, तुझे पवित्र बनाती चली जायेगी।

मेरे पुत्रो देखो, यह वाक् ऋषि वशिष्ठ ने वर्णित किया और कहा यागम् ब्रह्मेः व्रणम, यह याग तो स्वतः हो रहा है जैसे सूर्य अपनी किरणों के द्वारा उर्ध्वा में याग कर रहे हैं, चन्द्रमा अपनी अमृतमयी धारा को कांति दे करके याग हो रहा है, रात्रि परमाणुओं में संघर्ष होता हुआ याग हो रहा है, इसी प्रकार प्रत्येक क्षण में याग का चलन चल रहा है। यह परमात्मा का याग हो रहा है और मानव का याग जब होता है जब वह अपनी इन्द्रियों का साकल्य बना लेता है। अरे ! इन्द्रियों का साकल्य बनाने के लिये देखो, रूप है, रस है, गंध और शब्द अमृति गुरुतव्यम् ब्रह्मेः इसको ले करके जब उनका साकल्य बनाता है और रात्रि समय जो साधक अभ्यास करता है और अभ्यस्त हो करके और इनका साकल्य बना करके जो आत्मामं भूतम

ब्रह्मेः, जब हृदय रूपी यज्ञशाला को बना करके और इन्द्रियों के साकल्यों की जब आहुति देता है तो वह याग देखो, सर्वांग याग कहा जाता है।

मेरे पुत्रो देखो, **मुझे वे वाक् स्मरण आते रहते हैं, आज मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे आज मैं वशिष्ठ मुनि महाराज की उस सभा में विद्यमान हूँ। आज पुनः से वह संस्कार जागरूक हो रहे हैं** जहाँ ऋषि मुनियों का चयन और उनकी प्रतिभा इतनी उर्ध्वा में रही है। मेरे पुत्रो देखो, राजा रघु और उनकी देवी ने कहा कि प्रभु हम जो सर्वांग याग करना चाहते हैं, अमृतम् ब्रह्मेः, हमारा जो मन, वचन, कर्म है वह राष्ट्र के लिये है, हमारा जो मन, वचन, कर्म है वह परमात्मा के लिये है, हमारा जो मन, कर्म, वचन है वह सर्वत्र याग के लिये हैं और याग उसे कहते है जिससे हमारा जन, अमृतम् तीन गुणों का मनसा बना करके ब्रह्म को जैसे प्राप्त होता है ऐसे, ब्रह्मनिष्ठता में परिणित होना चाहिये। मेरे पुत्रो देखो, महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज ने यह वाक् मंतव्य दे करके यह निर्णय कर दिया कि प्रभु यागाम् भूतम ब्रह्मेः यागः ब्रहे, याग होना चाहिए। तो बेटा , शिल्पकारों को आज्ञा दी कि यज्ञशाला का निर्माण किया जाये। मेरे पुत्रो, मुझे स्मरण आता रहा है, उन्होंने देखो, यज्ञशाला का निर्माण किया। यज्ञशाला का जब निर्माण हो गया तो वहाँ निर्वाचन ब्रहे, देखो यज्ञशाला प्रारम्भ होने से पूर्व निर्वाचन की पद्धतियां मानी जाती हैं क्योंकि निर्वाचन की प्रणाली उस काल में विशिष्ट इसलिये मानी गई हैं कि उसमें बुद्धिमान और याज्ञिक चिंतन करने वाले पुरुष महः उसमें विशिष्ट माने जाते हैं, उसका परीक्षाफल आता, उनकी विचारधाराओं को लिया जाता, उसके पश्चात उनका निर्वाचन होता। निर्वाचन का अभिप्राय यह होता है, अमृतम ब्रहेः, मानो जो अमृत को पान करने वाला हो, जो तपस्वी हो, याग का अधिकार उसे होता है। देखो, एक याग का पुरोहित या आचार्य बन रहा है, यदि आचार्य का मन मस्तिष्क उस याग में नहीं है तो याग सफल नहीं होगा। यदि यजमान का मन, कर्म,

वचन उसमें नहीं है तो याग उसका भी सफलता को प्राप्त नहीं होगा। देखो, यागाम् भूतम, देखो, पुरोहित इतना तपा हुआ हो जिससे उसके मन में यज्ञ की धारायें रमण करती रहती हों, यज्ञ की धारायें उसे स्पर्श करती हों मानो उनका निर्वाचन होता रहा है। यजमान उस पुरोहित का निर्वाचन करता रहा है।

मैं आज बेटा, तुम्हें कर्मकांडों में ले गया हूँ। कर्मकांड की पद्धति बड़ी विचित्र मानी गई है। प्रत्येक भावना देवताओं से सम्बन्धित होनी चाहिये, चाहे वह ब्राह्मणम् ब्रहे, चाहे वह वेद का उद्गाता हो। वेद का उद्गीत गाने वाले का मन, वचन और आत्मा से उसका समन्वय होना चाहिये, आत्मा जिस गान से प्रसन्न होता हो अरे वही गान तो है, वही शब्द अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके, वेद मंत्रों की ध्वनि को ले करके द्यौ में प्रवेश करा देता है। अरे, उन्हीं का तो द्यौ से समन्वय रहता है। मेरे पुत्रो, इस सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा नहीं, केवल यह कि मानव के कर्मकांड की जो पद्धतियां है वे इतनी विचित्र होनी चाहिए। कर्मकांड की धारायें तो मैं कल ही प्रकट करूँगा। आज तो केवल इतना संकेत है कि **यज्ञशाला में विद्यमान होने वाला ब्राह्मण सुचरित्र हो,** ब्रह्म का उद्गीत गाने वाला उद्गीती गाने वाला हो जिसका सम्बन्ध वाणी से हो और वाणी का समन्वय प्राण से हो और प्राण का समन्वय चन्द्रमा से हो और चन्द्रमा का समन्वय सूर्य से हो और सूर्य का समन्वय, अग्नि से प्रदीप्त होता हुआ देखो, द्यौ में जो प्रवेश होने वाला शब्द है मेरे प्यारे देखो, इस प्रकार जो उद्गीत गाता रहता है, उद्गीतम् ब्रह्मा:, देखो उसे उद्गाता कहते हैं। अमृतम् ब्रह्मा: वेच प्रव्हा: वह अमृत को पान करने वाला है तो इसीलिये वह याज्ञिक पुरुष मुझे स्मरण आता रहा है।

देखो त्रेता के काल में, पूर्वकाल में जब यागों का विशिष्ट चलन हमारे यहाँ प्रत्येक गृह में रहा है तो तपस्वी जन भयंकर वनों से आते,

ब्रह्मचरिष्यामि, जो ब्रह्म को अपने में धारण करने वाले हो, वे याज्ञिक बन करके सुगंध में जब परिणित होते हो उससे सर्वत्र गृह पवित्रता की आभा में परिणित होता रहा है। इसीलिये मैंने पुनः कहा है कि वेदों का गान गाने वाला उद्गीत गाने वाला हो। वह जटा पाठ, माला पाठ, विसर्ग पाठ, उदात्त और अनुदात्त में वेदों का गान गाने वाला हो। उससे सर्वत्रता में पवित्रता का एक वातावरण बन जाता है, अपना जीवन पवित्रता की धारा में तत्पर हो जाता है। विचार विनिमय यह कि हम अपने में पवित्र बनने के लिये सदैव तत्पर रहें और विचारं विनिमय करते रहें। कल मुझे समय मिलेगा तो मैं यज्ञशाला में जो कर्मकांड की पद्धति है उसके ऊपर अपना कोई विचार दे सकूँगा। उसके ऊपर हमारा विचार विनिमय प्रायः होता रहा है। राजा रघु के यहाँ किस प्रकार का याग हुआ और निर्वाचन की पद्धति किस प्रकार की थी यह वाक्य कल भी उच्चारण कर सकेंगे। आज का हमारा विचार विनिमय केवल यह है कि ऋषि मुनियों की विचारधारायें और तपस्वियों का विचार लेना बहुत अनिवार्य है क्योंकि तपस्वियों के द्वारा ही याग होते हैं और जितना तपस्वी, ब्रह्मचरिष्यामि, जितना भी यांग में सम्मिलित होने वाला होगा, यागों में एक महानता की ज्योति जागरूक हो जायेगी। बेटा ! इस प्रसंग को मैंने पूर्व काल में भी तुम्हें कई समय वर्णन किया है। आज का विचार विनिमय यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और देव की महिमा का गुणगान गाते इस संसार सागर से पार हो जायें। बेटा देखो, उद्गीत गाते रहें, वेदों का गान गाने वाला वास्तव में जो गान गाता है, वह मन मस्तिष्क के द्वारा, मन, कर्म, वचन के द्वारा ही गान गाता है। बेटा, याग का कौन पुरोहित है, किसे यह अधिकार है, राजा पुरोहित जनों से जो प्रश्न करता है वह किस प्रकार के हैं, ऐसा वाक्य बेटा, कल उच्चारण करेंगे। समय मिलेगा शेष चर्चायें कल प्रकट करेंगे, अब वेदों का पठन पाठन होगा।

महाराजा रघु का याग - ३

देखो मुनिवरो, आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद वाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है अथवा उसके ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन होता रहता है। उस परमपिता परमात्मा का ज्ञान अनंतमयी माना गया है अथवा उसका विज्ञान एक महानता में रमण करता रहा है। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान के लिए प्रत्येक मानव, प्रत्येक तपस्या में चरने वाला परमपिता परमात्मा में ध्यानावस्थित हो करके उसकी महिमा को जानता रहता है। कुछ ऐसे प्राणी होते हैं जो उसको जानना चाहते हैं, कुछ इस प्रकार के प्राणी हैं जो उसके उपर, निर्णायक, अपने विचारों को स्थिर करना चाहते हैं कि मैं उस परमपिता परमात्मा में निश्चर हो जाऊं।

मेरे पुत्रो देखो, उस परमपिता परमात्मा के संबंध में मानव के भिन्न–भिन्न प्रकार के विचार क्यों रहते हैं ? यह एक विचार का विषय है, प्रत्येक मानव इसमें विचारता रहता है। हमारे यहाँ एक वेद मंत्र आया है और वह वेद मंत्र यह कहता है कि अन्नम् ब्रह्माः व्रणे स्वतम दीक्षाम रुद्र वरस्सुतम ब्रव्हाः। वेद का मंत्र यह कहता है कि प्रत्येक मानव इस आकांक्षा में लगा रहला है कि जैसे उसके अंतःकरण में संस्कारों का उद्‌बोधन होता रहता है, उसी प्रकार उसका वाह्य और आंतरिक जगत दोनों परस्पर विरोधी

बन जाते हैं और जिस समय वह मानव ब्रव्हे, वह यह विचारता है कि मैं परमपिता परमात्मा के संबंध में स्थिर हो जाऊं तो वह वेद मंत्र को ले करके गान गाता है और गान गाता हुआ उस परमपिता परमात्मा की सृष्टि को दृष्टिपात करके वह अपने में निश्चल हो जाता है और वह कहता है कि परमपिता परमात्मा का मैं सर्वांगम् , मानो उसी की रचना में मैं रमण कर रहा हूँ। एक मानव के हृदय में यह आकांक्षा लगी रहती है कि परमात्मा है अथवा नहीं है तो यह उसके ज्ञान की सूक्ष्मता मानी जाती है। एक मानव इस वाक्य में लगा हुआ है कि आत्मा और परमात्मा को एक सूत्र में, मानो एक सूत्रीकरण को मैं स्वीकार करूं अथवा नहीं। तो जो इस प्रकार के विचारक पुरुष होते हैं वे अपने में ब्रह्म को दृष्टिपात करते हैं और उसको विचारते—विचारते मौन हो जाते हैं क्योंकि अंत में बेटा, वह वाणी का विषय नहीं रहता। जब नेत्रों का, इन्द्रियों का कोई विषय परमात्मा का नहीं रहता तो परमात्मा ५, संबंध में वह अपने में निर्णायक नहीं बन सकते क्योंकि वह इन्द्रियों का विषय नहीं है। इन्द्रियों का विषय न होने से वह अपने में निर्णायक नहीं हो पाता तो वह अंत में अपने में मौन हो जाता है और अपने में उस ब्रह्म को ही दृष्टिपात करता अपने में निश्चल हो जाता है और यह विचार विनिमय करता है कि मैं वास्तव में अपने में ब्रह्म को ही दृष्टिपात करूं और मैं उसमें रत्त हो जाऊं, मैं उसी में ब्रह्मचरिष्यामि बन जाऊं। तो इस प्रकार की उसकी विचारधारा में अमृति आवृत हो जाता है, वह अमृतमयी बनता है क्योंकि संस्कारों का जगत है और इन्द्रियों से कोई मानव उस ब्रह्म को निश्चल करना जानता है, निश्चय पर जाना चाहता है तो वह हो नहीं पाता क्योंकि इन्द्रियों का वह विषय नहीं है। इन्द्रियों में ज्ञान और विज्ञान है, इन्द्रियों में परमाणुवाद है, इन्द्रियों में प्रभु के गान गाने की सत्ता है परन्तु देखो, वह अपने में ही अपनेपन को दृष्टिपात कर अंत में मौन हो जाता है और मौन हो करके वह उसका निर्णायक नहीं बन पाता। ऋषि मुनियों ने, जालवी ने तो यहाँ तक कहा है कि वह मौन हो

जाता है और मौन हो करके इन्द्रियों के सब विषयों का साकल्य बन जाता है और साकल्य में जब वह परिणित हो जाता है तो अंत में वह मौन हो जाता है।

विचार आता है, इस संबंध में बेटा, मैं कोई अपना विचार देना नहीं चाहता हूँ , केवल यह कि वेद मंत्र हमें यह उद्‌गीत गा रहा है कि मानव तू इन्द्रियों को संयम में बनाता हुआ, साकल्य बनाता हुआ तू परमात्मा की सृष्टि को निहारता रह। निहारते—निहारते बेटा, अंत में वह मौन हो जाता है। जैसे मानव के चक्षु हैं, सबसे प्रथम वह स्थूल रूप को दृष्टिपात करते हैं फिर सूक्ष्मता में परिणित हो जाते हैं, मानो फिर ध्वनि में चले जाते हैं, तरंगों में परिणित हो जाते हैं, अंत में देखो, नेत्रों का विषय शांत हो जाता है। मेरे प्यारे, वह चित्त के मंडल में भी प्रकाश को ही दृष्टिपात करते हैं और शब्द, मानो देखो, वह इन्म्रते अग्नि की धाराओं पर जो शब्द जाता है, प्रकाश जाता है उसको भी अपने में धारयामि बना लेते हैं। विचार आता रहता है मुनिवरो, परमात्मा का जो चिंतन है वह प्राय होना चाहिए परन्तु अपना चिंतन होना, आत्म चिंतन होना बहुत अनिवार्य है। आत्म चिंतन में प्रवेश करता हुआ अंत में इन्द्रियों का विषय शांत हो जाता है। आओ मेरे प्यारे, आज का विचार हमारा यह कि हम परमपिता परमात्मा की महती को दीक्षांत में परिवर्त्तित करते चले जायें। एक मानव देखो, अपने आचार्य के समीप जाता है। आचार्य उसे दीक्षांत बनाता है। दीक्षा वह जब लेता है जब वह बुद्धिमत्ता हो जाता है, बुद्धिमान जब बन जाता है तो आचार्य उसे दीक्षा देता है। वह उसे दीक्षांत विचार दे करके अंत में मौन हो जाता है।

मेरे प्यारे, **बहुत पुरातन काल हुआ जब बेटा, मैं महाराजा अश्वपति के यहाँ प्रायः अध्यापन का कार्य करता रहता था।** देखो, अमृतम विद्यालाम् भूतम ब्रह्माः, जब आचार्य के कुल में अध्ययन किया जाता है तो आचार्य

नैतिकवाद और चरित्रवाद, सब प्रकार का उपदेश देकर उसे नैतिकता में परिणित करके उसको दीक्षांत बना देते हैं। हमारे यहाँ आचार्य कहते हैं कि दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उसके पालना में परिणित हो जाओ। तो मुनिवरो देखो, वह दीक्षांत में परिवर्तित हो जाते हैं। तो हमें दीक्षा लेनी चाहिये और दीक्षा उसे कहते हैं जब बुद्धिमान वेदों का अध्ययन करता हुआ और विचार विनिमय करता हुआ, वह ज्ञान कर्म उपासना में परिणित होता हुआ जब ज्ञान प्रयत्न और उपासना में निहित हो जाता है तो उसको दीक्षा प्राप्त हो जाती है। मेरे प्यारे देखो, तुम्हे स्मरण होगा जैसे ब्रह्मचारी सत्यकाम जब गऊओं के पीछे चले गये, आचार्य महात्मा गौतम ने उसे वर्णित कराया तो बारह, बारह वर्ष के दो अनुष्ठान किये ब्रह्मचारी ने और गऊएं चार सौ से एक सहस्त्र हो गई तो वह आचार्य के कुल में आ पहुंचे तो उसके पश्चात् उन्होंने दीक्षांत उपदेश दिया और दीक्षा दे करके बेटा उसे अपनी अवृत्तियो से मुक्त किया और यह कहा कि जाओ तुम आत्मवेत्ता बनो। मेरे पुत्रो देखो, परम्परागतों से ही बड़ी विचित्र—विचित्र आख्यिकायें हमें वैदिकता में प्राप्त होती रहती हैं। हम उनके अनुकूल जब अपने जीवन को और राष्ट्र को उद्गीत रूप में परिणित कर देते हैं तो राजा के राष्ट्र की जो शिक्षा प्रणाली है, वह तपस्वियों का क्षेत्र बन जाता है क्योंकि ब्रह्मचारी भी तपस्वी है, आचार्य भी तपस्चर कहलाता है तो मानो देखो, वह आचार्य तपस्या में परिणित हो करके अपने में दीक्षांतता को प्राप्त करता है, वह अपने में महानता की प्रतिभा में रमण करने लगता है।

बेटा, तुम्हे मैं देखो, रघुवंश की चर्चा कर रहा था, महाराजा रघु के याग की चर्चा कर रहा था जहाँ वह प्राणम् ब्रह्माः वर्णम् ब्रहे, देखो, यज्ञशाला का निर्माण हो गया था। यज्ञशाला का निर्माण होने के पश्चात् ब्रह्मचारी अपने—अपने आसनो पर विद्यमान हैं। वहाँ निर्वाचन से पूर्व उन्होंने रात्रि के समय महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, माता अरुंधति, महर्षि विभांडक और

विश्वामित्र आदि ऋषियों को एकत्र करके यह कहा हे प्रभु , मैं क़ल निर्वाचन करूंगा तो यज्ञ में निर्वाचन कैसे होना चाहिए। महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज बोले कि देखो एक तो ब्रह्मा का निर्वाचन होना है, उसके पश्चात् उद्‌गाता और उसके पश्चात् अध्वर्यु और यजमान अपने आसन पर विद्यमान हो जाये और पुरोहित जन उसकी संरक्षणता में विद्यमान हों। इस प्रकार जब उन्होंने उद्‌गीत गाया तो रघु की देवी ने यह प्रश्न किया कि हे प्रभु , मैं यह जानना चाहती हूँ , मेरे हृदय में यह जानने की आकांक्षा लगी हुई है कि प्रभु ! सबसे प्रथम आप ब्रह्मा का निर्वाचन क्यों करते हैं। उन्होने कहा ब्रह्मा का निर्वाचन इसलिये कि ऋषि मुनियों ने पूर्व कल्प के आधार पर, मानव के कर्मकांड के लिये इस याग की पद्धति को सृष्टि के प्रारम्भ में प्रारम्भ किया। जैसी परम्परा चली आ रही है सृष्टि के आदि में, सृष्टि के अंग उपांगो के द्वारा ही इनकी प्रतिभा का जन्म होता रहा है। ब्रह्मा उसे कहते है जो संरक्षण करने वाला है जो उसमें अवृत्त कहलाता है। जैसे परमपिता परमात्मा ब्रह्मा है और उन्होंने इस संसार रूपी यज्ञशाला का जब निर्माण किया था तो निर्माण करने से परमपिता परमात्मा स्वयं ब्रह्मा बने थे और आत्मा यजमान बना क्योंकि जितना भी यह संसार रचा जाता है वह आत्मा के लिये रचा जाता है। आत्मा यजमान है और ये जो पंच–महाभूत हैं, जिसमें सबसे प्रथम अग्नि है, तरलतव देखो, जल है और पृथ्वी है और वायु है, अंतरिक्ष है, यह पंचमहाभूतों की प्रतिभा के द्वारा ही ये होता बन करके इस संसार रूपी यज्ञशाला का संचालन करते रहते हैं। तो परमपिता परमात्मा स्वयं ब्रह्मा है, आत्मा यजमान है। यजमान को यज्ञशाला में मूर्ध्वा कहते है, जिसके लिये यह यज्ञ रचा जाता है, जिसके लिये यह संसार का निर्वाचन होता है अर्थात् निर्माण करने वाला निर्माण करता है। अपनी–अपनी आभा में इसको पंचमहाभूतों का लोक कहा जाता है। यह संसार भी लोक है। जहाँ प्राणी आत्मा वास करता है उसका नाम लोक है। चाहे वह लोक यह पृथ्वी मंडल हो चाहे वह सूर्य मंडल हो, चाहे वह चंद्र मंडल हो, मानो उस सर्वत्रता का नाम लोक कहा जाता है। लोक कहते हैं जहाँ वास किया जाता है।

मेरे प्यारे देखो, लोकाम् भूतम ब्रव्हे व्रणा, यह अमृत कहलाया जाता है। तो इसीलिये जब यज्ञशाला का निर्माण होता है तो यज्ञशाला में कौन विद्यमान है ? यह आत्मा यजमान बन करके हूत करता है और पंचमहाभूत उसके सहायक बन जाते हैं और सहायक बन करके वही आत्मा का लोक बन जाता है। बेटा, इसीलिए इस संसार में परमात्मा को ब्रह्मा कहा जाता है। माता ने शरीर का जब निर्माण किया तो यह भी एक यज्ञशाला है और वह यज्ञशाला इसलिए कि वहाँ आत्मा विद्यमान है। माता का शरीर ही उस आत्मा का लोक कहा जाता है। निर्माण करने वाला निर्माणवेत्ता है, वह पंचमहाभूतों से निर्माण करता है और वह अपनी आभा में जब निर्माणित हो जाते हैं तो शिशु के जाते ही देवताओं के द्वारा उसकी वहीं एक रचना हो जाती है। नाना प्रकार की बुद्धियों का निर्माण, नाना प्रकार के मनस्तव का निर्माण, नाना प्रकार की कृतिका का निर्माण और चित्त के मंडल का भी निर्माण हो जाता है। मेरे पुत्रो देखो, आत्मा के साथ में जो कर्मो का शेष भाग रह जाता है, उससे चित्त का मंडल बनता है और उसी चित्त के मंडल के बनने से मानव की प्रत्येक इन्द्रियों का व्यवधान रचना के रूप में आता है। यदि आत्मा के साथ में कोई संस्कार नंही रहेगा तो यह शरीर के अंग–उपांगों के निर्माण का कोई मूल कारण नहीं बनता है। क्योंकि उसके अंतःकरण में जो संस्कार, आंतरिक जगत में जो संस्कार विद्यमान होते हैं तो इसीलिए आत्मा शिशु के रूप में रहता है। आत्मा शिशु के रूप में रह करके उसी के द्वारा मनम ब्रह्मा व्रणम् ब्रहे क्रतम देवाः मानो वही तो अपने अपने रूप में परिणित हो करके मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार की प्रतिभाओं का जन्म होता है। तो यह आत्मा का गृह कहा जाता है, निर्माण करने वाला वह प्रभु है, वह देव है.और वह परमपिता परमात्मा की प्रतिभा में रत्त रहने वाला है।

मेरे प्यारे देखो, जब देवी ने यह वाक्य श्रवण किया तो वशिष्ठ मुनि महाराज से कहा, धन्य है प्रभु , आपने ब्रह्म की चर्चायें मुझे प्रकट

की हैं। इसीलिये ब्रह्मा का निर्वाचन होना चाहिए। प्रभु ! उद्गाता का निर्वाचन क्यों होता है ? उन्होंने कहा उद्गाता उसे कहते है जो उद्गीत गाता है, जो स्वरों से गान गाता है। स्वरों से गान गाता हुआ आत्मा के क्षेत्र में, वायु मंडल को बनाने वाला उद्गाता कहलाता है क्योंकि वह जो स्वाहा उच्चारण करता है और अग्नि की धाराओं पर जो भी स्वाहा का उच्चारण किया जाता है, वह अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके द्यौ में प्रवेश हो जाता है। क्योंकि साधक के लिये वायु मंडल चाहिए इसलिये वह साधना में परिणित होता हुआ वायु मंडल को बनाता है। वायु मंडलम् ब्रह्माः, इसीलिये याग की रचना होती है क्योंकि वायु मंडल की जब शुद्ध विशुद्धता में रचना हो जाती है तो साधक अपनी साधना करने लगता है, साधना में परिणित हो जाता है, मन, कर्म, वचन को अपने में धारण करता हुआ, मानो प्राण की प्रतिभा में अकिृत हो जाता है। इसीलिये शुद्धिकरण करने वाला उद्गाता जब गीत गाता है और उद्गीत गा करके वह अर्ध्युम ब्रह्माः अवृत्तम देवत्वाम ब्रेहे। मेरे प्यारे, उन्होंने कहा प्रभु मैने यह भी स्वीकार कर लिया। उन्होंने कहा, नहीं देवी वाणी का संबंध चन्द्रमा से होता है, चंद्रमा से रसों को लिया जाता है। वाणी का समन्वय सूर्य से होता है, उससे तेज लिया जाता है। वाणी का समन्वय अग्नि से होता है जिससे उष्णता ली जाती है और इसी वाणी का समन्वय जल से होता है या उसमें रसों का अवधीर्ण हो जाता है। इसी वाणी का संबंध अंतरिक्ष से होता है। अंतरिक्ष में मानो यह शब्द जाता है और शब्द जब अंतरिक्ष में प्रवेश करता है तो वायु मंडल पवित्रता की तरंगों में तरंगित हो जाता है, वे शब्द द्यौ तक चले जाते हैं।

मेरे प्यारे देखो, यह वाक्य उच्चारण करते वशिष्ठ मुनि महाराज अपने में मौनता को धारण करने लगे। देवी ने कहा प्रभु यह भी मैंने स्वीकार कर लिया है परन्तु मैं यह जानना चाहती हूँ कि भगवन् उद्गाता अर्ध्युम ब्रह्मणा व्रत्तम देवाः, आपने उद्गाता की विवेचना तो की है परन्तु हमारे यहाँ

अमृतम ब्रह्मेः मानो यह अध्वर्यु कौन है ? उन्होंने कहा कि अध्वर्यु वह होता है जो द्रव्य का स्वामी है अथवा अध्वर्यु को कुबेर भी कहा जाता है। राजा भी अध्वर्यु को कहा जाता है जो द्रव्य का स्वामी होता है और देखो, यज्ञ द्रव्यों से होता है। द्रव्य क्या होने चाहियें ? मेरे प्यारे देखो, द्रव्याम् भूतम, सबसे प्रथम जो द्रव्य मानव के द्वारा है कि वह हिंसा से रहित हो। हिंसा से रहित होने वाला याग अध्वर्यु को प्राप्त हो जाता है। मेरे प्यारे जब अन्न इत्यादि पृथ्वी माता के गर्भ से नाना प्रकार के साकल्य को ले करके वह उसे विचारों में परिणित कर देता है, मुनिवरो, वही अमृत बन करके अंतरिक्ष में परिणित हो जाता है। अग्नि की धाराओं पर वह सुगंध परिणित होती हुई, देखो, देवत्व को प्राप्त करा देती है, वायुमंडल को पवित्र बना देती है, महानता में ओत–प्रोत करा देती है। इसीलिये वह जो साकल्य का स्थूल रूप है, अपने–अपने पंचमहाभूतों में वह अपने में रत्त होने वाला साकल्य है जो, मुनिवरो देखो, मानव के शब्दों के द्वारा, चित्र के द्वारा, सुगंध के द्वारा अग्नि की धाराओं पर परिणित हो करके द्यौ को प्राप्त हो जाता है। द्यौ से उसका समन्वय रहता है तो हे देवी, वही देवत्व को प्राप्त होने वाला है।

इस प्रकार जब ऋषि ने वर्णन किया तो उन्होंने कहा प्रभु ! मैने यह स्वीकार कर लिया है परन्तु राजा अध्वर्यु कैसे है ? उन्होंने कहा कि अध्वर्यु उसे कहते है जो संरक्षण करे, जो हिंसा से रहित होता है, राजा भी देखो, वही पवित्र होता है जो हिंसा से रहित होता है। राजा के राष्ट्र में यदि हिंसा होती है वह राजा हिंसक कहलाता है। जिस राजा के राष्ट्र में वाणी के उपर संतुलन नहीं होता वह राजा हिंसक होता है। आत्मा की मनोभावना को जहाँ नष्ट करने की राजा के राष्ट्र में प्रवृत्ति बन जाती है, वह राजा हिंसक कहलाता है। जिस राजा के राष्ट्र में गऊ और ब्रह्मवेत्ता नहीं होते वह राजा भी हिंसक कहलाता है क्योंकि राजा का जो राष्ट्र है

वह बुद्धिमानों से, ब्रह्मवेत्ताओं से पवित्र बनता है। और कामधेनु गऊ होनी चाहिए क्योंकि गऊओं का दुग्ध और उसका जो पदार्थ है, उसको आहार करना चाहिए क्योंकि देवताओं ने उसको मथा है। सूर्य से गो दुग्ध का संबंध रहता है, उसका संबंध बुद्धि से रहता है और बुद्धि का जब निर्माण हो जाता है तो मानव अपने में विवेकी बन करके राजा के राष्ट्र को उदीप्त बनाता है। इसीलिये राजा को हिंसक नहीं होना चाहिये। राजा को इसलिये अध्वर्यु कहते हैं क्योंकि राष्ट्र एक प्रकार की यज्ञवेदी है और यज्ञवेदी पर यह सर्वत्र क्रिया कलाप हो रहा है। मानो देखो, वह उसका रक्षक है और रक्षक होने से राजा को हिंसा रहित, अंहिसा में परिणित होना चाहिये। हिंसा से रहित राजा जब होता है, वेद में परिणित होता है, ब्रह्मज्ञानी, उसका आचार्य संरक्षण करने वाला, वह राजा अध्वर्यु कहलाता है। उसके द्वार जो द्रव्य है, उसके द्वार जो ममता है वह सब प्रभु की जब स्वीकार करता है, देवता की स्वीकार करता है और देवता प्रजा में ही ओत–प्रोत होने वाला है तो वह प्रजा का द्रव्य बन गया है। इदन्नमम् , वह मेरा नहीं, ऐसा जब राजा स्वीकार करता हुआ पालना में श्रेष्ठता को अहिंसक बन करके चलता है तो उसे अध्वर्यु कहते हैं। इसलिये **याग** जो होता है वह **हिंसा से रहित होता है।**

एक समय मेरे प्यारे महानंद ने मुझे यह प्रकट कराया था कि महाभारत के काल में, यागों में हिंसा का प्रारम्भ हुआ था। हिंसा का प्रारम्भ इसलिये हुआ क्योंकि बुद्धिमानों का और राजाओं का अभाव होने से राष्ट्र स्वार्थी बन गया। स्वार्थ में हो करके विवेकी पुरुष नहीं रहे, बुद्धिमान न रहने से राष्ट्र में ज्ञान का अभाव बन गया। ज्ञान का जब अभाव बन जाता है तो नाना प्रकार की रूढ़ियों का प्रादुर्भाव होता है और नाना प्रकार की रूढ़ियां जब बनती है तो हिंसा का वातावरण बन जाता है, एक दूसरा मानव एक दूसरे मानव को नष्ट करने के लिये तत्पर हो जाता है। इसलिए मैंने बहुत

पुरातन काल में अपने पुत्र के इन प्रश्नों का उत्तर भी दिया था कि इसलिये राजा को अहिंसक होना चाहिए। राजा अहिंसक वह होता है जो राजा ब्रह्मवेत्ता होता है। ब्रह्मवेत्ता हो करके वह समय-समय पर अश्वमेध याग करने वाला राजा है। राजा के राष्ट्र में बुद्धिमानों की सभा एकत्रित होनी चाहिए , राजा उनके मध्य में विद्यमान होना चाहिये जैसे राजा जनक के यहाँ सदैव ब्रह्मयाग होता रहता था। उनके यहाँ एक—एक याग बड़ी उर्ध्वता में होता था। कहीं वह गऊओं के सीगों पर स्वर्ण मढ़ देते थे, उन्हें कोई ले जाओ जो ब्रह्मवेत्ता हो। ब्राह्मण उस ब्रह्मवेत्ता से प्रश्न करते हैं, आचार्य जब प्रश्न करते हैं, विवेकी करते हैं, उनका महान् ब्रह्मवेत्ता द्वारा यथोचित उत्तर दिया जाता तो राष्ट्र में वातावरण पवित्र बन जाता है। हिंसा से रहित होने वाले को हमारे यहाँ अध्वर्यु कहा जाता है। इस प्रकार देखो, अध्वर्यु होना चाहिये।

ऋषिवर जब इस प्रकार का वाक् उच्चारण कर जब मौन होने लगे तो उस समय उनकी देवी ने कहा प्रभु आपने यह ब्रह्मा, उद्‌गाता, अध्वर्यु तो यथार्थ कहा है परन्तु यजमान का एक प्रसंग रह गया है कि हे प्रभु ! यजमान किसे कहते हैं। उन्होंने कहा यजमान आत्मिक दृष्टि से दार्शनिक और जो आत्मा के प्रति ज्ञान के गंभीर कुंज में प्रवेश करता है अथवा ज्ञान के गंभीर क्षेत्र में जाता है तो उस आत्मा को यजमान कहा जाता है। वह आध्यात्मिकवाद में परिणित होता है परन्तु भौतिक याग में हमारे यहाँ यजमान और उसकी देवी यागों के कर्मकांड में भिन्न—भिन्न प्रकार की महानता में परिणित होते रहे हैं। यजमान को अपने यहाँ यदि पुत्रयाग करना है तो देवी उसके दक्षिण भाग में विद्यमान होती है। अमृतम ब्रह्मा व्रणब्रहे केतप प्रवाह लोकाम वच्चत्त प्रहाः, देखो दो भू भाग होते हैं, एक सूर्यांग होता है एक चंद्रांग होता है, मानो सूर्यांग भाग में विद्यमान होके और **यदि पुत्र याग करना है तो चंद्रभाग में विद्यमान होना चाहिए।** इस प्रकार **जो निष्पक्ष और राष्ट्र कल्याण, समाज कल्याण और आत्मा के कल्याण के लिये याग करना**

है तो उसको सूर्यांग में विद्यमान हो कर गमन करना चाहिए। वेद में अनन्य मंत्र इस प्रकार के आते हैं जहाँ यागों के भिन्न–भिन्न प्रकार के चलन माने गये हैं। हमारे यहाँ यागों में भिन्न.–भिन्न प्रकार की प्रतिभाओं का जन्म होता रहा है। यागाम भूतम ब्रह्मणा व्रात्तम ब्रे ब्रह्म सुस्सुत्तम, मानो याग में परिणित होने वाले कहीं भौतिकवाद की चर्चायें हैं, कहीं सूर्यांग में हैं कहीं चन्द्रांग में है, इसलिये क्योंकि जो लोक कल्याण के यज्ञ होते है, आत्म कल्याण के होते है, ब्रह्मज्ञान में जाने वाले हैं, वहाँ सर्वत्र उसका आदर करना चाहिए उसको एक महानता का स्थान देना चाहिए। और जहाँ महानता, परन्तु वह निकृष्ट प्रकार की महानता है, उसमें तमोगुण की महानता होने से उसको चंद्र स्थान देना चाहिए। इस प्रकार स्थानों का भिन्न–भिन्न स्वरुप बन जाता है। यह वैदिक साहित्य की हमारी पद्धत्ति मानी जाती है।

मुनिवरो देखो, इस प्रकार जब वशिष्ठ मुनि महाराज ने अपना मंतव्य दिया तो देवी अपने में मौन हो गई और देवी ने कहा प्रभु चरु कैसा होना चाहिए ? उन्होंने कहा जैसा याग हो वैसा ही उसका चरु होना चाहिए। मेरे प्यारे, उन्होंने चरु की विवेचना करते हुए कहा कि सर्वत्र प्रकृति का जो द्रव्य अवृत रूप माना गया है, वह नाना प्रकार की वनस्पतियां हैं और उसके स्वरूप में जो गो घृत है वह वनस्पतियों का समूह रस कहलाता है। उसके द्वारा यजमान आहूत कर रहा है और देवी द्रव्य की स्वामी बनती है इसके लिये उसका हूत भी आ जाता है। इस प्रकार यागों के कर्मकांड में भिन्न–भिन्न प्रकार के अवधान और भिन्न–भिन्न प्रकार के अवांतर भेद माने जाते हैं। अश्वमेध याग करना है तो उसमें सर्वत्रता का, एक दूसरे का आदर और एक दूसरे की प्रतिष्ठा को विचारना है। यदि अजामेध याग करना है तो उसमें अजा का विचार करना है, आत्मा को ऊंचा बनाना है, इन्द्रियों से विजय होना है। यदि अश्वमेध याग करना चाहता है तो अश्व राजा है, प्रजा मेध है। प्रजा और राजा में दोनों में महानता की प्रतिष्ठा

की आवश्यकता रहती है। उस प्रतिष्ठा को अपने में लाना और याग करना अश्वमेध याग कहलाता है जिससे प्रजा उस कर्म में विहीन न हो जाये। कर्म करना ही मानव का कर्त्तव्य है। आज बेटा इस संबंध में विशेष चर्चा न देता हुआ यह कि कहीं अग्नि में कुछ चरु तपाकर बनाया जाता है कुछ अग्नि से वाह्य जगत में सूर्य की किरणों से तपाया जाता है। उनके चरु का निर्माण होता रहता है तो साकल्य बना करके जब यजमान याग करता है तो यजमान मूर्ध्वा कहलाता है। मूर्ध्वा बन करके सब का संबंध मानव के हृदय में परिणित हो जाता है। मन, वचन और कर्म जब एकाग्र होते हैं तो यह मन वेद की प्रतिभा में परिणित होता हुआ उसके लिए न कोई न्यून है और न उसके लिए कोई महान है परन्तु जब वह एक रस रह करके याग करता है तो उसका वायुमंडल महानता में परिणित हो जाता है।

जब देवी ने यह वाक्य श्रवण किया तो वह अपने में मौन हो गई और मौन हो करके देवी कहती है कि महाराज प्रथम आहुति कौन सी है। उन्होंने कहा प्रथम आहुति अमृताम् भूतम, अमृत की कहलाई जाती है। वह अमृत क्या है जो प्राण को प्राप्त होता है ? द्वितीय आहुति वह है जो अति अमृत कहलाता है जो आत्मा के संरक्षण में रहने वाले प्राण सखा हैं, उसको दी जाती है और तीसरी आहुति लोक कल्याण के लिए , राष्ट्र को और समाज को ऊंचा बनाने के लिये दी जाती है। इस प्रकार उन्होंने आहुतियों का वर्णन किया। उसके आगे एंक भेदन और भी माने जाते हैं, यजमान एक आहुति ऐसी देता है जिसका चित्र बन करके द्यौ में प्रवेश करता है। एक हूत ऐसी होती है जिसका मानो अग्नि में प्रदीप्त होते ही वह अग्नि द्यौ के उर्ध्वा भाग में रमण कराती है। आज बेटा मैं इस कर्मकांड में तुम्हे ले जाना नहीं चाहता। विचार विनिमय केवल यह कि हमारे यहाँ चन्द्र और सूर्य दोनों भागों का विचार विनिमय करते यजमान अपने में याग करता है और कहता है कि देवी आओ तुम सूर्य भाग में विद्यमान हो जाओ

क्योंकि यह यज्ञ हमारा देवत्व है, वही देवता तेरे शरीर में प्रवेश कर रहे हैं वही मेरे में प्रवेश कर रहे हैं, उन देवताओं को हम जागरूक करना चाहते हैं। मेरे प्यारे देखो, इसकी विज्ञानता तो वैदिकता में प्रायः हमें प्राप्त होती रहती है।

मेरे पुत्रो देखो, राजलक्ष्मी ने ऋषि के वाक्यों को स्वीकार किया। रात्रि समय वहाँ उनकी सभा होने के पश्चात् प्रातःकाल हुआ और जैसे हीं सूर्य उदय हुआ तो वे उस आहुति में परिणित हो गये और वे हूत करने लगे। हूत करते जब प्रथम वेद मंत्रो का उद्गीत गाने लगे अमृताम प्राणम ब्रह्मे वर्णम् ब्रहे तत्वाम् भूतम ब्रह्माः वस्सुतम, इस प्रकार जब वेद मंत्र का उद्गाता ने उद्गीत गाया तो प्रथम आहुति अग्नि में प्रदीप्त की गई क्योंकि अग्नि देवताओं का मुख है। देवताओं का मुख होने से सब देवताओं को प्रथम आहुति प्राप्त हो जानी चाहिए। वह **अग्नि इतनी तीव्र होनी चाहिये जिससे वह आहुति देवत्व को प्राप्त हो जाये।** उसके पश्चात् द्वितीय आहुति देता है, यामाम् देवम प्रजाम भूतम ब्रहे क्रतम देवा प्राणाः, मानो दूसरी आहुति यजमान देता है कि मैं प्राणम ब्रह्मेः, मैं अपने प्राण को ऊंचा बनाना चाहता हूँ। मेरा प्राण प्रजा के लिए होना चाहिए , देवताओं के लिए होना चाहिए तो उसकी आहुति हूत करता है। हूत करता हुआ वह साधना में परिणित हो जाता है। मेरे प्यारे, इस प्रकार उद्गाता अपने उद्गीत गाता है और विशुद्ध रूप से प्रथम आहुति का अवधान सूर्य को देता है, द्वितीय चंद्रमा में प्रवेश कर जाती है और तृतीय मानो वह देवत्व को प्राप्त हो करके वंह द्यौ में प्रवेश कर जाती है।

मेरे प्यारे, यागों का बड़ा विशाल एक कर्मकांड माना गया है। मैं कर्मकांडों के संबंध में कोई विशेष चर्चा नहीं देना चाहता हूँ केवल इतना कि हमें अपने में उस परमपिता परमात्मा के संसार रूपी याग के उपर विचार विनिमय करना है क्योंकि कोई भी महान से महान पुरुष हो परन्तु वह रहता इसी लोक में है, पंचमहाभूतों के लोक में रहता है और पंचमहाभूतों में तरंगें

होती हैं। जितनी तरंगे पवित्र होती हैं उतना ही वायुमंडल पवित्रता की आभा में प्रवेश कर जाता है और वही पवित्रता महानता में परिणित हो जाती है। जैसे माता के गर्भस्थल में जब हम जैसे शिशु होते हैं तो माता का विचार जितना पवित्र होता है, उतना ही शिशु को साकल्य प्राप्त होता रहता है और वह चरु जब प्राप्त होता है तो बालक की बुद्धि का निर्माण महान से महान बन जाता है इसलिये माता ब्रह्मेः वर्णास्हेः। तो इस प्रकार हूत होने चाहिये वह देवताओं के लिये किये जाते हैं। मृत्युंजय बनने के लिये द्वितीय याग है। जैसा मैने बहुत पूर्वकाल में वर्णन करते हुए कहा था कि हमें देवताओं के याग में परिणित होना है क्योंकि देवता पंचमहाभूतों का लोक है और आत्मा उसमें वास करता है। जितना देवत्व पवित्र होता है उतना ही आत्मा उसमें वास करता हुआ मन प्रसन्न रहता है। देवता प्रसन्न हैं तो पंचमहाभूत भी प्रसन्न हैं, देवता प्रसन्न हैं तो मन भी प्रसन्न है और मन प्रसन्न है तो बुद्धि भी प्रखर है और बुद्धि यदि प्रखर हो जाती है तो उसकी साधना पवित्र बन जाती है। जब साधना पवित्र हो तो चित्त के मंडल में बहुत सूक्तियां नष्ट होनी प्रारंभ होती हैं। आत्मा का जो यह शरीर रूपी लोक है जिसमें आत्मा वास करता है, यह अपने में महानता की प्रतिभा में परिणित हो जाता है। तुम्हें आत्मा के क्षेत्र में प्रवेश होना है और आत्मा के क्षेत्र में वह प्रवेश होता है जिसका वायुमंडल अंग संग पवित्र बन जाता है। जैसे माता यदि पवित्र है, पिता यदि पवित्र है तो बाल्य का जो अंग संग है वह पवित्र बन गया है वह बाल्य उच्च बनते हैं। माता पिता यदि कलह में वास करने वाले हैं, गृह में क्लेश करने वाले हैं, अनायास अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करते हैं तो बाल्यों का वायुमंडल पवित्र नहीं होता इसलिये बाल्य अपने कर्त्तव्य से विहीन हो जाते हैं। क्योंकि जब वायुमंडल नहीं मिलेगा, समाज नहीं मिलेगा तो वह वही क्रिया कलाप करेंगे जो उनका स्वार्थ कहता है और चित्त में उन्हीं संस्कारों का जन्म होगा और वही आवागमन के मूल में यह आत्मा बारम्बार जाती रहेगी। यह संस्कारों को उभरने का एक मुख्य उद्देश्य, शक्ति क्षेत्र कहलाता है।

विचार आता रहता है बेटा, इस संबंध में विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ केवल यह कि हमारे यहाँ पवित्रता की आवश्यकता है। यागाम भूतम ब्रह्मेः, वेद का ऋषि कहता है कि हे मानव तू याज्ञिक बन। हे मानव तू मन, कर्म, वचन को ले करके हृदय रूपी यज्ञशाला में तू संस्कारों की प्रत्येक वस्तु को दाह करके तू प्राण रूपी अग्नि को चेतन्य कर, उससे तपायमान हो, **प्राणायाम कर क्योंकि प्राण से मन स्थिर होता है।** प्राण से स्थिर हो करके प्राणायाम करता हुआ साधक साधना में परिणित होता हुआ वह अपने ध्येय में परिणित होता है। इस प्रकार मुनिवरो हमारा जीवन स्वयं व्यस्थितता का होना चाहिए। विचार आता है बेटा देखो, ब्रह्मा अपनी यज्ञशाला में अपने यजमान को इस प्रकार उपदेश देता है, आख्यिकाये देता है। प्राण की प्रतिभा में प्रवेश करता ब्रह्मा सबसे प्रथम यजमान को कहता है कि तुम अपनी प्रथम आहुति प्राण को दो, उसके पश्चात् अपान को दो, उसके पश्चात् व्यान को दो और फिर समान को दे करके उदान में प्रवेश कर जाओ क्योंकि उदानाम् भूतम ब्रह्माः वही मन बुद्धि का क्षेत्रं है और उस क्षेत्र में प्रवेश करके तुम्हारे जो जन्म जन्मांतरों के संस्कार हैं उनको वायुमंडल में उद्बुद्ध करने वाले बनो जिससे तुम्हारे आवागमन की प्रतिभा न बन जाये। मेरे पुत्रो, मैं आज विशेष चर्चा तुम्हें देने नहीं आया हूँ केवल यह कि महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज ने यह अपने में वर्णम् ब्रहे। ब्रह्मा अपने यजमान को यह उपदेश दे करके याग प्रारम्भ करता है। याग के प्रत्येक वेद मंत्र में देवता के द्वारा वह अपनी प्रतिभा को देता है, मानो जिस देवता का वह पूजन कर रहा है उसी देवता की वह आहुति है, द्वितीय देवता का वही मंत्र है और वही उसको प्राप्त होता रहता है।

बेटा, आज मैं विशेष विचार देने नहीं आया हूँ , निर्वाचन की चर्चाये चल रही थी। निर्वाचन इसलिए होता है कि मानव कितना तपस्वी है, वह उस देवता के संबंध में जानता है अथवा नहीं। यदि नहीं जानता

एक पुरोहित बन रहा है तो एक आचार्य बनाया जाता है, उस आचार्य को यदि मानसिक प्रकृति की कलह रहती है तो यज्ञ में अव्यधान हो जाता है, उसमें विघ्नता परिणित होती है इसलिये उसकी तरंगों को यंत्रों के द्वारा दृष्टिपात करना चाहिये। एक बुद्धिमान योगी और विवेकी होना चाहिये जिससे वह उसकी तरंगों को जानता रहे। इसकी चर्चायें तो बेटा मैंने तुम्हें कई काल में दी हैं। जब देखो, महात्मा काकभुषंड जी याग करते तो कहीं से ऋषि आते, वह आहुति देते तो उनकी प्रत्येक आहुति में देने वालों की तरंगें वायुमंडल में प्रवेश करती, वही अंतःकरण को स्पर्श करती, वहीं अपने याग को वह समाप्त कर देते थे। आज का विचार विनिमय यह कि हमें याज्ञिक बनना चाहिये। अपने मन, कर्म, वचन को एकाग्र करते हुए अपनी आत्मा के लोक को ऊंचा बनाना है क्योंकि संसार के जितने भी क्रिया कलाप किये जाते हैं चाहे वह धारणा में जाये, चाहे समाधि में प्रवेश कर जाये, मानो चाहे वह चित्त के मंडल में गमन कर जाये, चाहे वह वाह्य लोक में रहे, वह सब आत्मा के लिये ही कर रहा है।

बेटा, आज का विचार विनिमय क्या कि परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए , देव की महिमा का गुणगान गाते हुए यजमान अपने में उच्चता की प्रतिभा में परिणित होते रहें और राजन्नम् ब्रह्माः। बेटा राजा रघु के याग की मैं चर्चा कर रहा था क्योंकि बुद्धिमानों का समूह, तपस्वियों का समूह उदय होता है तो एक दूसरे की प्रतिभा का जन्म होने लगता है। वह अग्नि ममब्रहे व्रत्तम समिधाम भूतम ब्रह्मेः, देखो, अपने में विचार का विषय बन करके कल मैं शेष चर्चायें प्रकट करूंगा। आज का वाक् केवल यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए , देव की महिमा का गुणगान गाते अपने वाह्य लोक और अपनी आत्मा के लोक को ऊंचा बनाने में सदैव तत्पर रहें। यह है बेटा, आज का वाक् , अब मुझे समय मिलेगा तो मैं तुम्हें शेष चर्चायें कल प्रकट करूंगा। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन पाठन।

महाराजा रघु का याग-४

देखो मुनिवरो, आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद वाणी में नाना प्रकार के मनकों को एक सूत्र में पिरोया जाता है क्योंकि वेद का एक-एक मंत्र मनके के सदृश्य माना गया है और वह किसी सूत्र में पिरोया हुआ है। इस लिये जितना भी यह समूह है, परमात्मा का जितना भी यह ब्रह्माण्ड है यह मनके और धागे का दोनों का समन्वय माना गया है। जिसके आंगन में तुम दृष्टिपात करोगे वहीं तुम्हें मनके दृष्टिपात आयेंगे और वे मनके किसी न किसी सूत्र में पिरोये हुए होते हैं। मानो जैसे एक दिवस है, उस दिवस में भी चार प्रकार की विभक्त क्रियाएं होती हैं परन्तु उसी विभक्त क्रिया में जैसे प्रातःकाल है, मध्य काल है, सायं काल है और रात्रि का काल है तो मानो यह चार विभागों में विभक्त हो रहा है। इसी प्रकार एक रात्रि और एक दिवस का जो अहोरात्र है, वह भी मानो किसी का मनका कहलाता है और वह एक सप्ताह का मनका कहलाता है। सात दिवसों में सूत्र व्रडस्सुतम, वह सूत्र बन करके सूत्रित हो रहा है और वह जो सप्ताह है, वह एक पक्ष के रूप में विद्यमान रहता है। वह भी किसी मनके और सूत्र में पिरोया हुआ है, मानो देखो, वही एक माह में पिरोया हुआ है और उस माह में भी दो प्रकार के पक्ष हैं, दो प्रकार के मनके हैं-एक कृष्ण पक्ष और एक शुक्ल पक्ष कहलाता है। मेरे प्यारे देखो, एक को हमारे यहाँ उत्तरायण कहते हैं, और एक को दक्षिणायन कहते हैं।

दक्षिणायन में अंधकार का एक प्रदीप्त माना गया हैं और उत्तरायण प्रकाश का द्योतक है। विचार आता रहता है बेटा, दोनों मनके, एक मानो कृष्ण में है और एक शुक्ल में परिणित हो रहा है।

हमारे ऋषि मुनियों ने एक वाक्य बड़ा महत्वपूर्ण कहा है कि जो भी मानव अपने शरीर को, इस पंचमहाभूतों के लोक को जो भी मानव साधक होते हैं या विचारक होते हैं, मानो जो साधना में परिणित होते हैं, आत्मा के समीप जाने वाले, वे यह विचारते है कि हमारा जीवन जब यहाँ से जाये इससे पूर्व संसार में हमारा जीवन शुक्ल पक्ष में परिणित हो जाये, हम शुक्ल पक्ष में चले जायें, कृष्ण पक्ष में नहीं। यहाँ आचार्यो की भिन्न-भिन्न प्रकार की मान्यताएं हैं, उनके भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार हैं। उन्होंने कहा है कि जो उत्तरायण में अपने शरीर को त्यागता है, वह प्रकाश का द्योतक है और जो कृष्णायन में त्यागता है वह अंधकार का द्योतक माना गया है। मेरे प्यारे देखो, महाभारत के काल में जब मृत्यु शैय्या पर, वाणों की शैय्या पर जब भीष्म जी विद्यमान हो गये तो उन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपने आत्मा और शरीर का जब विच्छेद करूँगा जब मेरा जीवन उत्तरायण में चला जायेगा, मेरे जीवन की प्रतिभा उत्तरायण में ही समाप्त होनी चाहिये। तो मेरे प्यारे, उत्तरायण का अभिप्राय क्या है ? उत्तरायण कहते हैं जहाँ प्रकाश होता है, मानो जो प्रकाश में रत्त रहने वाला है। मुनिवरो देखो, मैने तुम्हे पुरातनकाल में निर्णय देते हुए कहा था कि जब पितामह भीष्म मृत्यु शैय्या पर विद्यमान थे तो महारानी द्रोपदी जब अपने महापिता को भोज्य देती तो गायत्री छन्दों का पठन-पाठन करती और जब अन्नाद का भोज्य बनाती तो गायत्री छन्दों का पाठ करती। उस अन्न से पितामह भीष्म की बुद्धि पवित्र हो गई ओर उसका रजोगुण क्षय होने लगा। उसके क्षय होने से उनका जीवन ज्ञान में परिणित हो गया। बेटा ! ज्ञान को उत्तरायण कहते है। हमारे यहाँ सूर्यांग कहते है। सूर्यांग हम ब्रह्मा: लोकाम् प्रव्हा व्रत्तम पदस्सुता:, मानो देखो, जब वह ज्ञान में परिणित हो गये, उन्हें ज्ञान हो गया तो उत्तरायण

में अपने शरीर, इस पंचमहाभूतों के लोक को उन्होंने बहुत प्रियता में त्यागा। क्योंकि पंचमहाभूतों के ज्ञान का होना ही, जिस गृह में मुनिवरो ! हम वास करते हैं, वह गृह जब तक हमारा पवित्र न हो तब तक उसमें हमारा रहना व्यर्थ कहलाता है। इसीलिये हमारा हृदय जब उत्तरायण बन जाता है, ज्ञान का पक्ष बन जाता है, ज्ञानी बन जाता है तो उस समय कर्मकाण्ड में परिणित होता हुआ, वह अपने प्रभु से याचना करता हुआ, पंचमहाभूतों के लोक को त्याग करके जब जाता है तो मुनिवरो देखो, वह उत्तरायण में चला जाता है, वह ऋषि मुनियों की कोटि में चला जाता है।

विचार आता है, मुनिवरो देखो, वही माह है, मानो कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष है। हमारे यहाँ कृष्ण पक्ष अंधकार को कहा गया है जिसमें नाना प्रकार की तमोगुणी उत्तेजनाओं का जन्म होता रहता है, अंधकार है। मानो देखो, जितने भी पक्ष हैं वे भी एक सूत्र में पिरोये हुए है परन्तु कुछ कृष्ण पक्ष में पिरोये हुए हैं, कुछ उत्तरायण में मानो शुक्ल पक्ष में पिरोये हुए हैं। मेरे प्यारे देखो, जितने निकृष्ट प्राणी होते हैं, निकृष्ट कोटि के कर्मकांडी होते हैं वे कृष्ण पक्ष को अपना प्रिय बना लेते हैं। जो मानव उर्ध्वा कोटि में रमण करने वाले होते हैं वे शुक्ल पक्ष को अपना पक्ष बनाते हैं और वे अपने जीवन को ज्ञान और विज्ञान के प्रकाश में ले जा करके अपने शरीर को अवृत्तियों में परिणित करते, पंच-महाभूत लोकों को जानते रहते हैं। ये दोनों प्रकार के जो प्राणी हैं मानो जो निम्न कोटि हैं उनका लोक कृष्ण पक्ष है और जो उर्ध्वा कोटि के प्राणी हैं, कर्मकांडी हैं, जो उर्ध्वा में गमन करने वाले हैं उनका लोक शुक्ल पक्ष माना गया है। विचारक पुरुष कहते हैं कि इन दोनों का मिलान हो करके वह भी एक माह बन करके एक मनका बन जाता है और वह मनका ही एक वर्ष की कोटि में, छः माह तो ऐसे होतें है जो शुक्ल पक्ष मे कहलाते है और छः माह ऐसे होते हैं तो कृष्ण पक्षी कहलाते हैं परन्तु जब उनँ दोनों का मिलान होता है तो एक वर्ष बन जाता है। वह वर्ष भी मुनिवरो देखो, एक मनका कहलाता

है। वह सप्तमम् ब्रह्मेः लोकाम् , वह एक वर्ष का मनका बन करके वह शरदः शतम् बन जाता है, मानो वह सौ वर्षों की माला बन करके, उसको धारण करके वह साधारण कोटि का प्राणी कहलाता है। मेरे प्यारे देखो, साधारण कोटि का जो प्राणी है वह यह प्रार्थना करता है कि मैं शरदम् बन जाऊँ, शरदः शतम्। मेरे प्यारे, जो उर्ध्वा कोटि के प्राणी होते हैं वे कहते हैं कि प्रभु मेरी तो कोई आयु ही नहीं है, मैं कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष, मानो एक-एक माह को, एक-एक वर्ष को, एक-एक शरदम् में परिणित करता हुआ मैं कल्प के आदि में भी जीवन में रहूँ और कल्प समाप्त हो जाने के पश्चात् भी मेरी स्मरण शक्ति बनी रहे और मैं पंचमहाभूतों के शरीरों को धारण करता रहूँ परन्तु मेरे सुःविचार बने रहें, सुःधारणा बनी रहें, वह इस प्रकार अपने में प्रार्थी बना रहता है। विचार विनिमय क्या कि आज का हमारा वेद मंत्र यह कहता है कि हे मानव तू शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष का विचारक बन करके उसमें अपनी उर्ध्वा कोटि को चुनव ब्रहे, उसको चुनौती देने का प्रयास कर जिससे तेरा जीवन एक महानता में परिणित हो जाये।

मेरे प्यारे देखो, पूर्वकाल में मैं महाभारत की गाथा वर्णन कर रहा था। इसीलिये उस मानव का अन्न पवित्र होना चाहिये जो शुक्ल पक्ष में जाना चाहता है, उस मानव के जीवन में एक अन्नाद की प्रतिभा होनी चाहिये, वायु का सेवन करना चाहिये, अंतरिक्ष में परमाणु बह रहा है उसका सेवन करना चाहिये, उसका सेवन करता हुआ साधक साधना में परिणित होता रहे। साधक बन करके उसका शुक्ल पक्ष उसे सिद्धता को प्राप्त करा देता है। वह अपने पंच महाभौतिकता को उच्च्व कोटि में परिणित कर देता है, उर्ध्वा में गमन कराता रहता है। विचार आता रहता है बेटा ! जो यह स्वीकार करते हैं कि मैं जितना आहार करता हूँ वह भी मेरा है, मानो जो मैं दूसरों का भक्षण कर जाता हूँ वह भी मेरा है। जब-जब इस प्रकार के प्राणियों के हृदयों को तथ्य में देने वाला प्राणी होता है वह निम्न प्रकार का प्राणी होता है, मानो वह यह विचारता है कि जो मैं आहार कर रहा हूँ, जो मेरा

यह शरीर है मैं इसी के पालन पोषण में लगा रहूँ और इसी के पालन पोषण में मेरी दैत्य प्रवृत्ति बनी रहे तो इस प्रकार के जो प्राणी होते हैं वे दैत्य प्रवृत्ति वाले कहलाते हैं। इसीलिये दोनों पक्ष हमारे लिये विचित्र माने गये हैं।

मेरे प्यारे देखो, मुझे स्मरण है, जब एक समय भीष्म जी अपनी मृतक शैय्या पर, वाणों की शैय्या पर विद्यमान थे तो वे ब्रह्म का उपदेश दे रहे थे और यह उच्चारण कर रहे थे कि मैं ब्रह्म में लीन होना चाहता हूँ। यह संसार सर्वत्र ब्रह्म में ही लीन कहलाता है और यह ब्रह्मणम् ब्रह्माः देखो, ब्रह्म इसका संचालन करने वाला है और ब्रह्म ही इसका नियमन करने वाला है। मानो जैसे मानव के नेत्र हैं, नेत्र गोलक में हैं, गोलक के पीछे एक पटल है, पटल के पिछले भाग में एक यंत्र लगा हुआ है, उस यंत्र के पिछले भाग में कहीं से साया आ रही है, वह आत्मा की साया है मानो देखो, उसका आत्मा उसका नियमन कर रहा है। इसीलिये हमें आत्मा को जानना चाहिये और आत्मा को जानने वाला ही अपने में महान कहलाता है, उर्ध्वा में गमन करने वाला होता है। जब भीष्म जी इस प्रकार का उपदेश दे रहे थे तो एक समय महारानी द्रोपदी ने कहा कि हे प्रभु ! आज तो आप ब्रह्म की वार्ता प्रकट कर रहे हैं परन्तु जिस समय भरी राज्यसभा में मेरे वस्त्रों का हनन हो रहा था, उस समय आप अपने में शांत क्यों थे। उस समय भीष्म जी ने कहा कि हे देवी ! यह जो राष्ट्र का अन्न होता है, राष्ट्र में जो कटिबद्ध होता है वह राष्ट्र का अन्न दूषितम् था, मेरे शरीर में जो रक्त बह रहा था वह अशुद्ध अन्न का रक्त बना हुआ मेरे में गमन कर रहा था। मेरी बुद्धि इस प्रकार की कुंचित बन गई कि मैं कृष्ण पक्ष में चला गया। हे देवी ! परन्तु मेरे शरीर का वह सर्वत्र रक्त अब पृथ्वी पर आ गया है और मुझे, जो तुम्हारा भावनाओं का अन्न, तरंगों का जो अन्न मुझे प्राप्त हुआ है उस अन्न से मेरे में भी शुद्ध, पवित्र तरंगों का जन्म हो गया है। उन शुद्ध, पवित्र तरंगों का जन्म हो करके ही हृदय उस

शुद्ध, पवित्र तरंग का ग्राही बन जाता है तो उर्ध्वा में तरंगें आनी प्रारम्भ होती हैं और वे ब्रह्म में पिरोयी हुई मुझे दृष्टिपात आती हैं। इसलिये हे देवी ! मैं आज ब्रह्म की चर्चा कर रहा हूँ।

मेरे प्यारे, विचार विनिमय क्या कि वेद का मंत्र कह रहा था अन्नम् ब्रव्हा वर्णम् देवत्वम् देव स्सुताहम् , वाचनमम ब्रव्हे क्रताः । मेरे प्यारे देखो, अन्न ही हमारा जीवन माना गया है, अन्न ही हमारा शुक्ल पक्ष है, अन्न ही हमारा कृष्ण पक्ष कहलाता है। तो यह अन्न भी मुनिवरो देखो, किसी सूत्र में पिरोया हुआ है। अन्नम् ब्रह्माः देखो, अन्न वाणी से पिरोया हुआ है और वाणी मन से पिरोयी हुई है और मन मुनिवरो ! आत्मा के सूत्र में सूत्रित रहने वाला है। तो विचार आता है बेटा, कि सर्वत्र प्रकृति का जो मण्डल है वह मन की आभा में ही गमन करने वाला है। तो विचार आता रहता है बेटा देखो, यह मनस्तम् ब्रह्माः वाणी रसो व्रन्धम, जो इसको हम अत्रि कहते हैं, वाणी को ही तो हम ऋषि अत्रि कहते हैं और यह अति व्यवहार कर जाती है। परन्तु जब यह अमृता में प्राणत्व को प्राप्त होती है तो इसे प्राण ही भक्षण करने वाला है, प्राण ही उसे आहार कर जाता है, संसार को निगल जाता है। वही प्राण मेरे प्यारे, अपने में धारण करता है और वही मनस्तव की धारा कहलाती है, उससे प्राणत्व की आभा में रत्त हो करके, मानो गति का संचार होता है और संचार होने के पश्चात् उसमें उद्बुद्धता आ जाती है। आओ मेरे प्यारे, मैं इस संबंध में विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करना नहीं चाहता हूँ। इसलिये आज मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ बेटा, मैं राजा रघु के याग की चर्चा कर रहा था।

राजा रघु के याग की चर्चा मुझे बहुत समय से स्मरण आती रहती है। कई समय से हम यह अपने में अनुभव कर रहे हैं कि जैसे हम राजा रघु की यज्ञशाला में विद्यमान हैं और यज्ञशाला में बुद्धिमानों का समूह है

और वहाँ याग की चर्चायें हो रही हैं। नाना दार्शनिक आ करके उसमें वृत्तियों का अवधान कर रहे हैं। ऐसा बेटा, मुझे अनुभव होता रहता है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे हम आज अयोध्या में, उस राजा रघु की यज्ञशाला में विद्यमान हों जहाँ मुनिवरो देखो, यज्ञशाला में याग होता हुआ, नाना ब्राह्मणत्व, नाना ब्रह्मवेता अपने में ब्रह्म का बखान कर रहे हैं। नाना होता जन यजमान की वाणी को पवित्र बनाना चाहते हैं और यजमान यज्ञशाला का धिपति बन करके, वह द्यौ लोक में जाना चाहता है। वह अपने को द्यौ लोक में प्रवेश करना चाहता है, ऐसा प्रतीत होता है। बेटा आओ देखो, आज मैं तुम्हें उस यज्ञशाला में ले जाना चाहता हूँ। यह यज्ञशाला कर्मकाण्ड का निधि कहलाया जाता है। मैं इससे पूर्वकाल में यह उच्चारण कर रहा था कि **दक्षिण विभाग में उत्तरायण उद्बुद्ध होता हुआ ब्रह्मा विद्यमान होता है और उत्तरायण में विराजमान होने वाला उद्‌गाता उद्‌गीत गाता है जिसका दक्षिणाय मुखारबिन्दु होता है** क्योंकि वह सुरों का व्यंजन करने वाला दक्षिणायन कहलाता है। पूर्व दिशा में अध्वर्यु विद्यमान होता है और पश्चिमाभ्‌ भूतप प्रव्हः, **प्रतीची दिक में यजमान विद्यमान होता है और यजमान की जो देवी** है, यज्ञमः ब्रह्माः देखो वह **सीधे अंग में विद्यमान हो कर के** अपने में उर्ध्व गान करते रहते हैं। अंगनम्‌ ब्रह्माः लोकाम्‌ वाचः प्रव्हा लोकाम्‌ , मैं इस संबंध में उद्‌गीत गा रहा था और उद्‌गीत गाता मानो, सीदाम्‌ अंगम्‌ ब्रह्मेः देखो, याग में स्वाहाः हूत होना चाहिए जिससे मानव का जीवन उस परमपिता परमात्मा को प्राप्त हो जाये क्योंकि यह जो याग है यह परमात्मा की एक निधि है, परमपिता परमात्मा का सर्वोच्च वेदों का कर्मकाण्ड माना गया है। इसमें न कोई न्यून होता है और न कोई प्रवर होता है परन्तु जब भी विचार उसके अनुकूल बन जाते हैं वह सामान्यता की आभा में, कोटि में परिणित हो जाता है।

आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ केवल यहाँ, वेद में नाना प्रकार के कहीं-कहीं यागों में उत्तरायण और दक्षिणायन का भी वर्णन आता रहा है परन्तु यजमान का आहार कैसा होना चाहिए ? मेरे प्यारे देखो, महर्षि

वशिष्ठ मुनि महाराज पुरोहितव विद्यमान हो गये और महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज याग के ब्रह्मतव को प्राप्त हुए और उद्गाता महर्षि शृंगी का वृत बन करके बेटा ! जब गान गाने लगे और भी नाना ऋषि देखो, व्रेतकेतु ऋषि महाराज उस याग में विश्वामित्र के सहयोग से अध्वर्यु के स्थान पर विद्यमान हो गये। विद्यमान हो करके याग का प्रारम्भ होने से पूर्व उसकी छवि एक विचित्र कहलाई, मानो जैसे ब्रह्मा का स्थान वहाँ विद्यमान हो गया हो। तरंगों का यह जगत है, तरंगों का यह याग है। इसमें तरंगें जितनी पवित्र होती हैं उतना ही याग वायुमण्डल का एक धिपति बन जाता है। विचार आता रहता है बेटा ! देखो, यज्ञशाला में आहार पवित्र होना चाहिये। मेरे पुत्रो देखो, यजमान का जो आहार है, वह एक अंजली में **जल ले करके वह यज्ञशाला के दक्षिण भाग में उसको स्थित करते हैं** और जब उनको जल की पिपासा, इच्छा होती है तो जल का पान किया जाता है। वह पात्र स्वर्ण का हो या चंद्रवृत्ती का हो चाहे वह नाना प्रकार की धातुओं का निर्माण किया हुआ होना चाहिये। यदि यह भी न हो तो पृथ्वी के रजो से बना हुआ पात्र होना चाहिए और **उस जल को यजमान को पान करना चाहिये।** इसी प्रकार अमृतम ब्रह्माः वरणसुते देवाः, वह जल ही मानो उसके लिए अमृत कहलाता है, उसमें यज्ञ की तरंगें तरंगित होती रहती है और उस जल में स्वाहाः की ध्वनियों से उसमें जो जीवन शक्ति है, वह प्रबल बन जाती है इसलिये वह यजमान के हृदय को पवित्र बनाने वाला है।

विचार आता रहता है, उसी प्रकार का अन्नाद होना चाहिए। अन्नाद ऐसा हो जिसमें अग्नि प्रधानता विशेष हो और वायु प्रधानता सूक्ष्मतम हो। वास्तव में पंच महाभूतों के अंग तो प्रत्येक अन्न में परिणित होते रहते हैं परन्तु यह ब्रह्मा का कर्त्तव्य है, उसको वह आहार कराना जिससे उद्गाता का मन और ब्रह्मा का मन एक सूत्र में सूत्रित हो जाये। यजमान, होता जनों का मन उस सूत्र में हो जाये। मन सूत्र में जब होता है जब अन्न पवित्र होता है, उससे आचरण की धारायें पवित्र होती रहती हैं। तो महाराजा

रघु के यहाँ बेटा ! जब याग का प्रारम्भ हुआ तो नाना ब्रह्मवेत्ता अपना ब्रह्म का बखान कर रहे हैं, वेद मंत्रों की ध्वनि में ध्वनित हो रहे हैं। बेटा ! सबसे प्रथम यजमान गार्हपथ्य अग्नि का चयन करता है और गार्हपथ्य अग्नि का आव्हनीय अग्नि में समन्वय करता है। आव्हनीय अग्नि का समन्वय करके वह दक्षिणायन अग्नि में प्रवेश करके वहाँ स्वाहाः का उद्गीत गाता है। वह स्वाहाः कह करके उद्गीत गाता है। आज बेटा ! कर्मकाण्ड के सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं, केवल इतना कि उनका हृदय, मन, मस्तिष्क एकाग्र रहना चाहिए। मन मस्तिष्क जब एकाग्र रहता है तो मन उसका पवित्र है तो शरीर पवित्र है और शरीर पवित्र है तो भावना पवित्र है और भावना पवित्र है तो उसके हृदय की आभा पवित्र कहलाती है। जब हृदय पवित्र होता है तो आत्मा उद्बुद्धता के मार्ग को गमन करता है। विचार आता है बेटा ! वही चित्र बन करके द्यौ लोक में प्रवेश हो जाते हैं, उसका द्यौ मण्डल पवित्र बन गया, भू मण्डल पवित्र बन गया और जब भूः भवः और स्वः जब तीनों मण्डल पवित्र बन गये तो बेटा देखो, उसमें, त्रिवर्धा में परमपिता परमात्मा की प्रतिभा को दृष्टिपात करता रहता है। आओ मेरे प्यारे, मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट नहीं करने आया हूँ , केवल विचार विनिमय यह कि हम परमपिता परमात्मा की महती और उसकी आभा को जानने के लिये तत्पर हों।

बेटा ! राजा रघु का याग चलता रहा, वह जो सर्वांग याग हुआ था उसका मुझे प्रतीत है। उद्गाता जब उद्गीत गाता है, वह स्वर और व्यंजनों से गाता है तो वह तरंगों को जहाँ चाहता है वहीं तरंगित कर देता है। कौन से मंत्र का कौन सा देवता है, उस देवता के प्रति वह अवधान करता है और ध्यानावस्थित हो करके उसी का स्वाहाः कहता है। बेटा ! उसी का स्वाहाः कह करके अग्न्याधान करता है। वह अग्नि उर्ध्वा में रमण करने वाली है, वही अग्नि तो मानो देखो, गार्हपथ्य कहलाती है जिस गार्हपथ्य में, ब्रह्मचर्य में तपा हुआ यजमान होता है। वही अग्नि गृहपथ्य होती है

जिसका गृह तपा हुआ होता है और वही अग्नि आव्हनीय अग्नि कहलाती है जिसका शिक्षा प्रणाली में पवित्रतव होता है और वही अग्नि दक्षिणायन को प्राप्त हो करके उत्तरायण को गमन करती हुई मानो देखो, द्यौ को प्राप्त हो जाती है। विचार आता रहता है बेटा ! वह अग्नि देवताओं का मुख कहलाता है। देवाम् भूतम देवम ब्रह्मा: विनम ब्रहे, वह अग्नि देवत्व को प्राप्त होती रहती है। तो विचार आता रहता है कि इनका हमें ध्यानावस्थित होना चाहिये। मेरे पुत्रो ! इस संबंध में विशेष विवेचना देने नहीं आया हूँ , विचार केवल यह कि हम जब अन्नाद को, यज्ञशाला के अन्न को पाना चाहते है तो देखो, उसमें गो-रस होना चाहिए। गो-रस किसे कहते हैं ? गो कहते हैं इन्द्रियों को और गो कहते है पशु को। पशुम् ब्रह्मणा नहीं परन्तु पशु कैसा होना चाहिए ? जैसा मैंने पूर्वकाल में कहा, राजा रघु के यहाँ जब पशु , गोधन आता तो उनके पीछे गोधन को अवृत करने वाला एक नाद होता और नाद होने के पश्चात् जब पशु प्रसन्न हो जाता है और वह दुग्ध देता है, प्रसन्नता के दुग्ध को पान करना ही उसके लिये सुयोग्यता कहलाती है, उससे मन की प्रीति का निर्माण होता रहता है। परन्तु देखो इसी विचार को ले करके गो नाम वनस्पतियों का माना गया है। वनस्पतियों में जितनी भी त्रिवर्धा की औषध हैं, आयुर्वेद के अनुसार उन औषधियों का पिपाद बनाना चाहिये। पिपाद बना करके, अग्नि में तपा करके, खरल करके, उस अन्न को अग्नि में तपा करके पान करना चाहिए। वह अन्न, मन से ले करके प्राण की प्रतिभा को जन्म देने वाला होता है। जिससे वह अनुष्ठान अपने में सफलता को प्राप्त होता है।

मुझे स्मरण आता रहा है, बेटा देखो, राजा रघु के यहाँ जब याग हुआ। यज्ञशाला की अग्नि में तपाया हुआ, मानो तरंगों से तपे हुए अन्न को पान किया जाता तो वह याग सफल होता है क्योंकि मन की धारा उसी में रहती है, मन की तरंगों का जन्म उसी से उत्पन्न होता है और जब मनस्तम ब्रह्मा:, देखो यह मन इस पृथ्वी से लेकर सूर्यमण्डल क्या, लोक

लोकान्तरों में, परमात्मा के ब्रह्माण्ड में रमण करने वाला है। वह ब्रह्माण्डम् ब्रुहतम ब्रव्हे, वही मनस्तव कहलाता है बेटा ! जो याग से पवित्र बनाया जाता है। मैं इस विषय में, विचार विशेषता में रमण करना नहीं चाहता हूँ केवल यह कि कर्मकाण्ड का बहुत महत्व माना गया है। कर्मकाण्ड की पद्धतियों में यदि यजमान, होताजन के मन की प्रकृति चंचल बन गई है, मानो देखो, हिंसक बन गई है तो वह यज्ञ का जो तारतम्य है, वह समाप्त हो जाता है जैसे विद्युत का निर्माण करने वाला विद्युत को मध्य में से दूरी कर देता है, कटि अस्तुत कर देता है तो विद्युत का संबंध कुछ समय के लिये शांत हो जाता है अथवा उसका तांता शांत अथवा नष्ट हो जाता है, पुनः से देखो, उसका निर्माण होता है। तो इसी लिये यज्ञशाला में तपे हुए ब्रह्मचारी हों, तपा हुआ ब्रह्मा हो जो ईर्ष्या से रहित हो। ईर्ष्या से रहित होने वाला ब्रह्मा, ब्रह्मतव को प्राप्त होता है और ब्रह्मचर्य से सजातीय जो ब्रह्मचारी हैं वह अपने ब्रह्मवर्चोसि को प्राप्त हो करके ब्रह्म का दर्शन करता है। मानो यजमान की वाणी को जब होताजन पवित्र बनाता है वह द्यौ, भूर्भवः स्वः को ऊँचा बनाता वह देवत्व को प्राप्त होता है और इसी प्रकार होताजन जो यजमान की वाणी को पवित्र बनाना चाहता है वह स्वाहाः कह करके स्वः लोक को प्राप्त हो जाते हैं। विचार आता है बेटा ! वेद का यह मर्म है, वेद के मर्म को जानने वाले इस विद्या को अच्छी प्रकार जानते हैं, जैसे याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने अनुष्ठान किये हैं।

मुझे स्मरण है, काकभुषंड जी ने एक सविता नामक पोथी का निर्माण किया था जिसमें यज्ञों का सर्वत्र विधि विधान उसमें वर्णित किया था। उन्होंने बारह-बारह वर्ष के अनुष्ठान किये। काकभुषंड जी ने लोमश मुनि की आज्ञा से, जो ऋषि आता उसके भावों को जान करके उनको वृत कर दिये थे। विचार आता रहता है बेटा ! यज्ञ अपने में बड़ा महत्वपूर्ण एक क्रियाकलाप माना गया है। इसका मन और प्राण से विशेष समन्वय होता है। पंच महाभूतों की प्रतिभा से इसका समन्वय होता है और वायुमण्डल में जो तरंगें जाती

है वह प्रदूषण को अपने में निगल जाती हैं और उसमें शुद्धिकरण का प्रसार कर देती हैं। विचार आता रहता है कि प्रकृति के मण्डल में प्रदूषण नहीं होता है। जब मानव की वाणी पवित्र होती है तो प्रदूषण नहीं रहेगा, नेत्र पवित्र बन गये हैं तो प्रदूषण नहीं रहेगा। यदि उसकी त्वचा में प्रीति है वह मृत्यु से पार हो गये हैं तो प्रदूषण नहीं रहेगा। इसी प्रकार उनकी वाक्शक्ति इतनी पवित्र होनी चाहिये जिससे वे मृत्यु से पार हो जायें। क्योंकि संसार में जितने भी अनुष्ठान हैं वह इसलिये करते हैं कि हम मृत्यु से पार हो जायें। तो मृत्यु से पार कैसे होंगे ? मृत्यु से पार होने के लिये हम नेत्रों की ज्योति का अग्नि से समन्वय कर लें और घ्राण का पृथ्वी से समन्वय कर दें, अपने में निबटारा करते चले जायें और त्वचा का समन्वय वायु से करते चले जायें और वाणम् ब्रह्मेः, वाक् शक्ति का समन्वय अंतरिक्ष से और वाणी का रसों से अपने में अवृत करते हुए , मानो प्रत्येक इन्द्रियों को, ज्ञानेन्द्रियों को अरे ! मृत्यु से पार कर दो, उन्हें स्वः में प्रवेश कर दो, मानो स्वः लोक में ले जाओ तो तुम मृत्यु से पार हो जाओगे और पंच महाभूतों के लोक में रमण करने वाला यह आत्मा पंच महाभौतिक बन करके मोक्ष की पगडंडी को ग्रहण करने लगेगा।

मेरे प्यारे ! यह वाक्य उन्होंने उद्गीत रूप से गाया तो याग प्रारम्भ हो गया। याग में आहार, व्यवहार उत्कृष्ट होना चाहिये। मैं महर्षियों का वाक्म ब्रह्मे व्रतम, ऋषियों ने कहा है कि वाक् शक्ति में पवित्रता होनी चाहिये और राजा को कहा हे रघु ! अब तुम याज्ञिक बन गये हो, तुम्हारा राष्ट्र भी याज्ञिक होना चाहिये, प्रजा में ज्ञान होना चाहिए, प्रजा में अनुशासन होना चाहिए और अनुशासन जब होता है जब राजा स्वयं अनुशासित हो जाता है। यदि राजा अनुशासित नहीं होता है तो प्रजा-कद्धापि भी अनुशासित नहीं होगी। यदि राजा याज्ञिक बन जाये तो प्रजा याज्ञिक बन जायेगी। वेदों के ज्ञान-विज्ञान में उड़ान उड़ने वाला राजा हो जाये तो प्रजा भी उसी में उड़ान उड़ने लगती है। जैसे **गृहपति और गृहस्वामिनी के घर में पवित्रता**

आ गई है तो बाल्य-बालिका पवित्रता की धारा में रमण कर जाते हैं। राजा के राष्ट्र में विज्ञान होना चाहिये परन्तु विज्ञान का यदि दुरुपयोग हो जाता है तो वह विज्ञान ही राष्ट्र को निगल जाता है और यदि राष्ट्र में विज्ञान का सदुपयोग होता है तो वही राष्ट्र की प्रतिभा को जन्म दे देता है। विचार आता रहता है, जैसे माता पिताओं का आचरण और उनकी पवित्रता देखो, बाल्यों को ऊँचा बनाती है, गृह को पवित्र बना देती है इसी प्रकार राष्ट्रवाद की चर्चायें मैं प्रकट करता रहता हूँ। जब **विद्यालयों में आचार्य पवित्र हैं तो ब्रह्मचारी पवित्र बनेगा और ब्रह्मचर्य के पवित्र होने से वह मृत्यु से पार हो जायेगा, ब्रह्म में परिणित होता रहेगा।** इसीलिये हमारा जीवन उस परमपिता परमात्मा से कटिबद्ध रहना चाहिये।

आओ मुनिवरो देखो ! आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ , विचार विनिमय केवल यह कि आज हमें परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए , देव की महिमा का गुणगान गाते हुए हमें मृत्यु से पार होना है। याग का अभिप्राय है, मृत्यु से पार होना; याग का अभिप्राय है, हिंसा से रहित रहना। क्योंकि पंच महाभूत हिंसा से रहित है, आत्मा हिंसा से रहित है, मानो मनस्तव प्रकृति का तन्तु है इसलिये मानव को हिंसा से रहित रहना चाहिये। देखो, यह मनका बना करके एक-एक वेद मंत्र देवता से पिरोया हुआ है, उसी देवता की प्रतिभा को ले करके एक माला बनानी चाहिए। प्रत्येक आहुति मानो मनका बन करके वह ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोये जाते हैं और पिरोने से ही वह माला बन जाती है। उस माला को धारण करने वाला यह जगतव कहलाता है, पंच महाभूत कहलाता है। पंचमहाभूतों की माला बनती है तो लोक बन जाते हैं। लोकों की माला बनती है तो गंधर्वतव बन जाते हैं। जब इस प्रकार माला बनती रहती है-बनती रहती है तो यह ब्रह्माण्ड मालाओं के सदृश्य बन जाता है। इस माला को धारण करने वाला साधक अपने में, साधना में परिणित हो जाता है।

मेरे प्यारे ! हमारा जीवन एक महानता में पिरोया हुआ होना चाहिए। कर्मकाण्ड की पद्धतियों में जैसे वरुण है, **वरुण का स्थान** उत्तराण ब्रव्हे, मानो **ईशान स्थलि पर होता है, वहाँ** विद्यमान हो करके जलस्तम् जलम् ब्रव्हा, **जल का** मानो **परोक्षण होता है।** और वह परोक्षण जैसे परमपिता परमात्मा ने, सृष्टि के पिता ने जब संसार रूपी यज्ञशाला को निर्माणित किया तो एक मेखला, जिसको समुद्र कहते हैं, समुद्र देखो, एक मेखला का क्रियाकलाप कर रहा है। वह वायुमण्डल की दूषित तरंगों को अपने में तरंगित कर रहा है, उसका शोधन कर रहा है। इसी प्रकार **जल की पूजा यज्ञशाला में, मेखला में होती है।** इसी प्रकार वरुण की पूजा होती है। पूजा का अभिप्राय है कि इसका सदुपयोग होना चाहिए। वरुण को विद्यमान करने के लिये स्वर्ण के कलश होने चाहिए और चंद्रवृत्तियों के कलश होने चाहिये और भी नाना प्रकार की धातुओं के होने चाहिये। जो विशेष तरंगों को अपने में ग्रहण कर सकें ऐसे पात्रों में जल होना चाहिए। यदि धातु के कलश न हों तो पृथ्वी के रजो से बने हुए जो पात्र हैं, वे उस नृत को अपने में धारण करने वाले, तरंगित होते हैं। देखो, वहाँ कलश का पूजन है। अग्नि, देवताओं का मुख बन करके, उर्ध्वा में गमन करती है, परमाणुओं को ले करके उर्ध्वा में प्रवेश कर जाती है, वही मानव को उत्तिष्ठित बनना चाहिये और उर्ध्वा में गमन करना चाहिए! अग्नम् ब्रह्मः लोकाम व्रतम . . . . ।

मेरे पुत्रो देखो, इसी प्रकार वेद के आचार्यो ने अपना-अपना मंतव्य दिया। अपने मंतव्य की चर्चा तो बेटा मैं कल प्रकट करूँगा आज का वाक् तो केवल इतना उच्चारण कर रहा हूँ कि प्रत्येक मानव अपने जीवन को ऊँचा बनाते हुए याग जैसे क्रियाकलापों को, उसके कर्मकांडों को जान करके ही अग्रणीय बनता चला जाये और अपनी वाणी से स्वाहाः कहता चला जाये। हे प्रभु ! मेरी वाणी को तू पवित्र बना दे, मेरे हृदय से इसका समन्वय है। मेरे हृदय का मिलान अपने हृदय से, हृदय से हृदय का मिलान हो जाये जिससे प्रभु ! मेरे जीवन में अंधकार न रहे, मैं शुक्ल पक्ष का गामी ब

जाऊँ, मैं कृष्ण पक्ष को त्यागता रहूँ। ज्ञान का नाम ही मुनिवरो ! शुक्ल पक्ष है और अज्ञान का नाम ही कृष्ण पक्ष कहलाता है। सबको अन्धकार से न दृष्टिपात करता मैं, प्रकाश में रत्त हो जाऊँ। मेरे प्यारे ! आज का हमारा अभिप्राय क्या है ? हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए , कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष को विचारते अपनी इन्द्रियों को मृत्युंजय बनाते चले जायें। इन्द्रियों के रहस्यों को जानना, ज्ञान-विज्ञान में प्रवेश होना यही तो मुनिवरो देखो विज्ञानाः भूतम ब्रह्मा:, यही तो विज्ञान की प्रतिभा कहलाती है।

आज का विचार क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए , देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार होते चले जायें, ऐसा हमारा प्रयास होना चाहिए। जैसे मैंने पितामह भीष्म की चर्चायें प्रकट की, बेटा ! उनका शुक्ल पक्ष बन गया तो शरीर को त्यागा गया। जब मानव ज्ञानी बन जाता है तो इस शरीर में ज्ञानी बन करके इस संसार से जाना चाहिये जिससे आगे तरंगों में तरंगित हो करके, ज्ञान का पुंज हमें प्राप्त हो जाये। यह है बेटा ! आज का वाक् , अब मुझे समय मिलेगा तो मैं तुम्हें शेष चर्चायें कल प्रकट करूँगा। विचार यह कि हमें बेटा ! माला को धारण करना चाहिये। यह परमात्मा की विशेष माला है, इस माला को माला में ही परिणित हो करके हम अपने मनकों के उपर विचार विनिमय करते हुए इस संसार सागर से पार हो जाये। यह आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

बरनावा
११-३-९२

महाराजा रघु का याग-५

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद वाणी में उस महामना परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि हमारे यहाँ परम्परागतों से ही, जिस भी काल में आचार्यजन अपनी-अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो करके विचार-विनिमय करने लगे हैं तो एक-एक वेद मंत्र के उपर उन्होंने अनुसंधान किया। जैसे मानो समुद्र में परिणित होने के पश्चात् नाना प्रकार की सृष्टि हमें प्रायः दृष्टिपात आती हैं इसी प्रकार वेद के एक-एक मंत्र में नाना प्रकार की विद्याओं का प्रादुर्भाव होता रहा है और उस वेद मंत्र के उपर आचार्यजन विचार-विनिमय करते रहे हैं। हमारे यहाँ आज का वेद मंत्र आ रहा था 'व्यँगरम ब्रह्माः व्रतम देवत्वां महा व्रणम् देवत्वाहम् वाचस्सुतप प्रवाहाः' यह वेद का मंत्र हमारा आख्यिकाओं के रूप में हमें यह वर्णित करा रहा है कि इन वेद मंत्रों को चिंतन करने से यह प्रतीत होता है कि यह संसार नाना प्रकार की उपाधियों से अलंकृत किया गया है। हमारे यहाँ जैसे राष्ट्रः राजा भी एक उपाधि के रूप में परिणित माना गया है। इसी प्रकार हमारे यहाँ नाना प्रकार की उपाधियां कही जाती हैं। महादेव भी एक उपाधि है, महादेव जो देवों का भी देव है।

हमारे यहाँ देवों के देव महादेव की बड़ी महिमा का वर्णन आता रहा है। आचार्यों के समीप जब यह वेद मंत्र आया तो उन्होंने

महादेव की विवेचना करते हुए कहा कि यह जो ब्रह्माण्ड है मानो यह महा-देवाम भूतः प्रमहा ध्रणस्सुतहाः, यह उस अवृत्तों से पिरोया हुआ है जिसमें प्रत्येक वस्तु तुम्हें महानता में दृष्टिपात आती रहती है। इसी प्रकार महादेव नाम हमारे यहाँ याग को माना गया है। याग का नाम भी महादेव है क्योंकि जो देवताओं का देव है, जिस महादेव का अग्नि ही मुखारबिन्दु है और शब्द ही उसका मूर्ध्वा कहा जाता है। इसी प्रकार हमारे वैदिक साहित्य में यह नाना प्रकार से अलंकृत माना गया है। हमें चाहिए कि हम प्रत्येक उपाधि के उपर विचार विनिमय करते चले जायें। जैसे हम एक आयुर्वेदाचार्य को आयुर्वेद की औषधियों से अलंकृत करते हैं तो वह वैद्यराज कहलाता है। वह राम भूतम ब्रहे, जो दूसरे के कष्टों को दूअब्रहे, मानो दुरिता को जो नष्ट करने वाला है। इसी प्रकार यहाँ परमपिता परमात्मा को महादेव की उपाधियां दी जाती हैं जैसे यज्ञम् ब्रह्मणाः जो रजोगुण तमोगुण और सतोगुण से उपराम हो जाता है, वह अपने में महादेव कहलाता है, जो देवताओं का भी देवत्वं कहलाता है। हम सदैव उस महादेव की उपासना करते रहें। याज्ञिकजन अपनी एकंत स्थलियों में विद्यमान हो करके उस महादेव अथवा याग की महिमा का वर्णन करते हैं। क्योंकि राजा का नाम भी महादेव कहलाता है जिस राजा के राष्ट्र में प्रजा में शांति हो और राजा स्वयं अपनी इन्द्रियों पर संयम करने वाला हो तो वह राजा प्रजा का स्वामी होने से, जैसे मैंने पुरातन काल में कहा कि जैसे हिमालय प्रबल माना गया है, उर्ध्वा में रहता है इसी प्रकार जिस राजा के राष्ट्र में इस प्रकार की विचारक प्रजा हो जो दर्शनों से गुथे विचारों को अपने में धारण करने वाली, जिसमें निर्मोहिता का अवृत्त हो, मानो प्रजा में मोह न हो, प्रेम की प्रतिभा जैसे वायु अपने में गमन करता है इसी प्रकार राजम् ब्रह्मेः, देखो, हिमालय के तुल्य रहने वाली प्रजा और उसका जो स्वामी, निर्मोही राजा है उसका नाम महादेव कहा जाता है। परन्तु देखो, वह यज्ञम ब्रव्हा क्रतम, उस यज्ञ को भी महादेव कहते हैं जहाँ देवताओं

की तरंगें, देवताओं का निर्माण अथवा देवताओं की आभाओं का अन्नाद उत्पन्न होता हो।

मैने इससे पूर्वकाल में, तुम्हें वर्णन करते हुए कहा था कि यज्ञ में सर्वत्रता का पूजन होने से और देवता उसके अंग-संग रहने से वह याग महादेव है क्योंकि वह द्वंद देता है, वह वृत्तियां देता है, परमाणुओं का आदान प्रदान करता रहता है और विज्ञान देता है क्योंकि विज्ञान की जो उपलब्धियां हैं वे प्राय यागों से उत्पन्न हुआ करती हैं। मैंने तुम्हें कई कालों में वर्णन करते हुए कहा कि यज्ञशाला में विद्यमान हो करके ज्ञानी पुरुष अथवा विवेकी पुरुष यज्ञ का अवधान करके उसमें मानो ब्रह्मे वर्णस्सुतम, उसी में विज्ञान को अपने में प्राय दृष्टिपात करते रहे हैं। जैसे विद्यालयों में प्राय हमारे यहाँ नाना प्रकार की शालायें हैं तो एक उन्हीं में विज्ञानशाला होती है और विज्ञानशाला में ब्रह्मचारी विद्यमान हो करके अपनी उड़ानें उड़ते रहे हैं। उस उड़ान का अभिप्राय यह होता है कि लोक लोकांतरों की यात्रा करने वाला राजा के राष्ट्र में यातायात होना चाहिए। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें अपने वाक् देते हुए कहा था कि राजा रावण के राष्ट्र में या बहुत से राजा अयोध्या में इस प्रकार के हुए हैं जिनके यहाँ लोक लोकान्तरों में जाने के लिए नाना प्रकार के यातायात थे। द्वापर के काल तक प्राय यह विज्ञान बना रहा और जब महाभारत काल समाप्त हुआ तो महाभारत में यह सर्वत्र विज्ञान रसातल को चला गया था। यह विज्ञान नष्ट हो गया जो सूर्य की किरणों से चलने वाले यान के द्वारा लोकों की परिक्रमा की जाती है। सूर्य की किरणों से, चन्द्रमा की शीतल कांति से भी यानों का निर्माण होता रहा है अथवा उसमें गति करने की क्षमता होती है। ऐसे ही प्राण सत्ता जैसे मानव के शरीर में परमपिता परमात्मा ने देखो, वायु का विभाजन किया है, कहीं प्राण के रूप में, कहीं अपान के रूप में, कहीं व्यान के रूप में, कहीं उसी को समान और उदान के रूप में मानो उनका अपना स्वरूप का वर्णन किया है। यह परमपिता परमात्मा की

एक अनुपम रचना है, उसका विज्ञान बड़ा अनूठा माना गया है। इन्हीं प्राणों के आश्रित हो करके यह शरीर हमारा यंत्र बन करके गति करता है। इसी का जब हम स्थूल रूप ले करके यंत्रों का निर्माण करते हैं तो लोक लोकान्तरों की यात्रा भी इसी के माध्यम से प्राय होती रही है। आज मैं बेटा ! शून्य बिन्दु में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार केवल यह कि हमारा जो विज्ञान है, हमारी जो मानव धारायें हैं, वे बड़ी विचित्रता में परिणित होती रही हैं। आज का हमारा विचार यह कि हम परमपिता परमात्मा की अनुपम विज्ञानमयी धारा को जानने का प्रयास करें। हमारे यहाँ जब विज्ञानवेता पनपता है।

मैने तुम्हें कई काल में शिकाम केतु उद्यालक की चर्चायें की हैं। उद्यालक गोत्र में ऋषि शिकाम केतु उद्यालक के एक-एक शब्द में मानो यंत्र हैं, एक-एक शब्द में विद्यमान होने वाला सर्वत्र वायु का नृत्त हो रहा है और उसी में, अपने में उड़ान उड़ने वाले चित्र विद्यमान रहते हैं। विचार आता रहता है कि यह विज्ञान अपने में पूर्णता को प्राप्त होता रहा है। जब शिकाम केतु उद्यालक या महर्षि भारद्वाज मुनि की चर्चायें या तत्व मुनि की चर्चायें स्मरण आती रहती हैं, उनका नृत्त स्मरण आता रहता है जो बेटा ! लोकों की यात्रा करने में सफलता को प्राप्त होते रहे हैं। लोक लोकान्तरों में जाना, यातायात बनाना, मेरे प्यारे, मैने तुम्हें कई काल में वर्णन करते हुए कहा है। जब मुझे महाभारत का वह काल स्मरण आता है तो अर्जुन के पुरुषार्थ और उनका जो क्रिया कलाप है वह बड़ा विचित्र रहा है। उन्होंने विज्ञान के यंत्रों में महान पुरुषार्थ किया है और इतना पुरुषार्थ किया कि वे अपने यंत्रों में विद्यमान हो करके महाराजा इन्द्र की सहायता से उन्होंने यंत्रों का व्यवधान किया। यंत्रों में विद्यमान हो करके वे मंगल में गये। वहाँ की यात्रा कर वहाँ उन्होंने वहाँ के वैज्ञानिको से नाना प्रकार की विद्या का अध्ययन किया, यंत्रों को क्रियात्मकता में जाना। उनका विज्ञान का पुरुषार्थ बड़ा विचित्र रहा है। आज मैं बेटा ! इस प्रकार के वाक् नहीं

देना चाहता हूँ, केवल यह कि हमारे यहाँ विज्ञान में कोई सूक्ष्मता नहीं रही है।

वैदिक साहित्य में प्राय यह आता रहा है कि हमारे यहाँ ब्रह्मणे व्रत्तम देवत्वम ब्रह्माः उपाधस्सुतहेः, यह सब उपाधि से अलंकृत होने वाला जगत है। जैसे हमारे यहाँ इन्द्र नाम उपाधि है, शिव नाम भी उपाधि है, ब्रह्म नाम भी उपाधि मानी गई है, विष्णु भी उपाधि है और ऋषियों में वशिष्ठ भी उपाधि है और जमदग्नम ब्रह्माः व्रणस्सुतम, जमदग्नि भी एक उपाधि है, अत्रि भी एक उपाधि मानी गई है। हमारे यहाँ ऋषि मुनि जब अपनी लेखनी बद्ध करना प्रारम्भ करते हैं तो वाणी को अत्रि कहते हैं, यह एक उपाधि से अलंकृत है। अत्रि उसे कहा जाता है जो अपनी वाणी का अति उपयोग करके और वह सिद्धांत से अपने वाक्यों को उद्‌गीत रूप में गाता है अथवा गंभीर, परमात्मा के अथाह समुद्रों में समुद्रित हो करके अपनी वाणी का उद्‌गीत गाता है तो वह अत्रि कहलाता है। हमारे यहाँ विश्वामित्र भी एक उपाधि रूप में वर्णित की जाती है। दधिची भी एक उपाधि है, इस साहित्य में दधिची के बहुत से प्रायवाची शब्द हैं। इन्द्रो वनम् ब्रह्माः देवत्वाम, मानो देखो, हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में जो उपाधियां हैं उनके गुणों को जानना अथवा उनके गुणों के आधार पर जब उनको स्वीकार करते हैं तो वह हमारे विचारों में विचित्र विचरण करने लगते हैं। जैसे हमारे यहाँ इन्द्र है तो एक सौ एक अश्वमेध याग करने से इन्द्र बनता है। हमारे यहाँ परम्परागतों से यागों में इन्द्र की उपाधि क्यों ? क्योंकि इन्द्र उसे कहते हैं जो सर्वत्र राजाओं को अपने ज्ञान से, अपने कौतुक से, अपने वीरत्तव से, अपनी महानता से जो प्रत्येक राजा को विजय कर लेता है, ज्ञान के द्वारा, दीक्षा के द्वारा, यंत्रों के द्वारा, किसी भी प्रकार से वह जब विजय कर लेता है तो वह अश्वमेध याग का अधिकारी होता है। वह राजा जब अश्वमेध याग करता है तो उसे इन्द्र की उपाधि प्रदान की जाती है। जो उपाधियों से अलंकृत है, इन्द्र वह कहलाता है जो उपम ब्रह्माः व्रत्तम।

देखो, बिष्णु वह कहलाता है जो विष्णम् ब्रह्माः क्रत्तम देवत्तम विष्णुः, जो राजा चार भुजों को ले करके अलंकृत होता है। सबसे प्रथम भुजों में पद्म, गदा, चक्र और शंख ध्वनि होती है। जिस राजा के राष्ट्र में सबसे प्रथम चरित्र, पद्म होता है, द्वितीय में गदा होती है, तृतीय में चक्र होता है जिससे वह अपनी संस्कृति का प्रसार करता है। शंख ध्वनि के संबंध में बेटा ! एक बड़ा विशेष रूप माना गया है। जो शंख ध्वनि है, मानो देखो, शंखाम् भूत्त प्रव्हा लोकम, वाचन्नमम ब्रव्हे देवत्वाहम। जब ध्वनि के उपर अनुसंधान करने लगते हैं तो वह ध्वनि अपने में ध्वनित होती रहती है। जैसे हमारे यहाँ वेदों का उद्गीत गाने वाला जब उद्गीत गाता है तो वह सबसे प्रथम उस उद्गीत को गाता है जैसे जटम ब्रह्माः क्रतम देवम मालः व्रहे, जैसे जटापाठ है, माला पाठ है विश्रग और उदात और अनुदात में वह पाण्डतव अपने में गान गाता है। राजा के राष्ट्र में पवित्र वेदों का ज्ञान जटा पाठ और माला पाठ में गाया जाता है। राजा के राष्ट्र में जितना बुद्धिजीवी प्राणी होता है वह अपने को स्वर संगम में परिणित कर देता है। बुद्धिजीवी उस प्राणी को कहते हैं जो ज्ञान में, कर्म में और उसकी करनी, कथनी दोनों एक ही तुल्य होते हैं। विचार आता है कि उस राजा के राष्ट्र में विवेकी, जो ज्ञान, जो रजोगुण, तमोगुण से उपरामता को प्राप्त होते हैं, सतोगुण से उपरामता को प्राप्त होने वाला योगी कहलाता है, वह मानो देखो, विवेकी पुरूष होता है। राजा को इस प्रकार का ज्ञान हो, राजा भी देखो, विवेकी होना चाहिये। यदि राजा की दृष्टि में अपनी संतान का मोह होगा और प्रजा का उतना मोह नहीं होगा तो वह राजा राज्य का अधिकारी नहीं होता। न्यायालय में विद्यमान हो करके न्यायाधीश जब न्याय करता है, एक स्थलि में उसका पुत्र है, एक स्थलि में प्रजा का स्वाभी है, जब राजा दोनों का न्याय करता है तो वह परमात्मा की कृतिका का न्याय होता है। उसका निष्पक्ष न्याय ही उसको देवता बनाता है। तो इस प्रकार वह उसको विवेकी बना देता है, ज्ञानी बना

देता है। आज इस संबंध में कोई विशेष चर्चा नहीं, केवल यह कि मुनिवरो देखो, राजा अपने में महान पवित्रतव की धारा में रहना चाहिए। मोह-ममता में राष्ट्र और प्रजा का हम पालन नहीं कर सकते। मोह-ममता में ईश्वर का ध्यानावस्थित नहीं हो सकते। देखो, जो ईश्वर का भक्त होता है वह भी यदि मोह में आ जायेगा तो उसकी आत्मा का हनन हो जायेगा। राजा यदि मोह में आ जायेगा तो उसकी राष्ट्रीयता का हनन हो जायेगा। विचार आता रहता है बेटा ! आज मैं इस संबंध में विशेष चर्चा प्रकट नहीं करुँगा।

आओ ! मैं तुम्हें उस याग में ले जाना चाहता हूँ जिस याग की चर्चायें मैं कई समय से कर रहा हूँ। कई समय से याग की चर्चायें, विज्ञान की चर्चायें प्राय होती रही हैं। आओ मुनिवरो ! आज मैं तुम्हें ब्रह्मणे व्रत्तम देवत्व अप्रव्हा, वेद का वाक्य कहता है। राजा रघु के यहाँ याग जब प्रारम्भ हो गया तो नाना ऋषि-मुनि उसमें विद्यमान हैं, निर्वाचन हुआ तो वशिष्ठ मुनि महाराज पुरोहित बने और महर्षि साकल्य मुनि महाराज उस याग के आचार्य बने और ब्रह्मकेतुम ब्रह्माः और महर्षि शीतल व्रेनकेतु विश्वामित्र उस याग के ब्रह्मतव को प्राप्त हो गये। और भी नाना ऋषि जैसे व्रण इत्यादि अपनी-अपनी उपाधियों में अलंकृत हुए। कोई अध्वर्यु बना, कोई उद्‌गाता बना, कोई विचार विनिमय करने वाला वृत्त बना। बेटा देखो, याग का प्रारम्भ हो गया तो ऋषि मुनि रात्रि समय अपने कक्ष में विद्यमान हैं, विचार विमर्श हुआ तो सोम वृतीका ऋषि ने यह प्रश्न किया कि महाराज यह जो याग है यह अप्रतम कहलाता है, यह अश्रुति है तो उन्होंने कहा कि यह श्रुति है। श्रुति का अभिप्राय यह होता है कि याग में प्रत्येक वस्तु अपने को शांत करके सुगंध का प्रादुर्भाव करती है। जैसे समिधा है वह अग्नि में समाप्त हो करके, अपने स्थूल रूप को समाप्त करके वह सूक्ष्मता में अग्नि में समर्पित हो, उसका भोज्य बन करके वही अग्नि देवताओं का भोज बन जाता है और देवताओं का भोज बन करके देवता उससे तृप्त होते

हैं और जब तृप्त होते हैं तो वही तृप्त हो करके प्रदूषण को समाप्त कर देते हैं। वे जन समूह के लिये पवित्र धारा को जन्म देते हैं। इसी प्रकार जैसे नाना प्रकार का साकल्य है उस साकल्य में मधुपन है, पौष्टिक है, सुगंधित है और रोग नाशक है, वह चारों प्रकार का साकल्य एकत्रित करके जब यजमान यज्ञशाला में हूत करता है तो वह चारों प्रकार का सूक्ष्म रूप बन करके अंतरिक्ष में ओत-प्रोत हो जाता है। एक–एक कण-कण माला बन करके वह प्रदूषण को समाप्त करता रहता है।

इसी प्रकार साकल्य घृत में भी चारों गुण कहलाये जाते हैं। घृत्यम भूतम ब्रह्मेः देखो घृत के हमारे यहाँ बड़े प्रायवाची शब्द हैं। घृत नाम देखो, श्रद्धा को कहा गया है। श्रद्धा से ओत-प्रोत होने वाला जो साकल्य है, ओत-प्रोत होने वाला जो गो-रस है मुनिवरो ! जब अंतरिक्ष में देवता उसे ग्रहण करते हैं तो देवता प्रसन्न हो जाते हैं और प्रदूषण को समाप्त करते हुए, मानो वायुमंडल उससे पवित्र बनता है। साधकों की दृष्टि में साधना करने वाला अपने में साधक बन करके उर्ध्वा को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार उन्होंने ब्रह्मणा व्रत्ते, तो कहा है कि अस्तुतिहः मानो यह याग अस्तुत्री कहा जाता है, इसीलिये हमें याग के उपर विचार विनिमय करना चाहिये। जैसे मंत्र देखो, देवताव्रत कहा जाता है। देवता जब व्रत्त होता है तो प्रत्येक देवता के आंगन में विद्यमान होने वाला वेद मंत्र अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके और वह साकल्य उसमें ओत-प्रोत हो करके, भावना से द्यौ को प्राप्त होता रहता है। वह अपने में सूत्रित होता हुआ, उस जगत में प्रविष्ट हो जाता है। इसी प्रकार याग अपने में बड़ा विचित्र एक क्रियाकलाप माना गया है, जो सृष्टि के प्रारम्भ से वर्त्तमान के काल तक जो क्रियाकलाप चल रहा है वह बड़ा अनुपम है। इसके उपर विचार विनिमय करना बड़ा श्रोत्रिय कहा जाता है। इस प्रकार यजमान अपनी भावना को अवृत्त करता है।

दक्षिणा

मेरे प्यारे देखो, वह रघु का याग लगभग छः माह तक प्रारम्भ रहा, छः माह के पश्चात् मुनिवरो ! उसका समापन हुआ। जब समापन हुआ तो राजा रघु ने कोष के सब द्रव्य को ब्रह्मवेताओं को दक्षिणा में परिणित कर दिया। राजा ने यह कहा कि हे पुरोहितजनो ! मैं तुम्हें दक्षिणा में क्या दूँ ? उन्होंने कहा कि तुम हमें अमृतम ब्रह्माः देवत्वम् , तुम हमें अमृत दो। राजा रघु ने कहा प्रभु ! अमृत कहाँ प्राप्त होता है ? उन्होंने कहा यजमान यदि अमृत में चला गया है तो हमें वह अमृत प्राप्त हो गया है। राजा ने कहा प्रभु ! यह कैसा वाक् उद्‌गीत गा रहे हो, आप तो ब्रह्मवेता हो ब्रह्मनिष्ठ हो, आत्मा को विष्णु रूप बनाने वाले हो। हे प्रभु ! आप तो स्वतः अमृत हो, मैं आपके शब्दों को नहीं जान पाया हूँ। उन्होंने कहा कि **हमें द्रव्य नहीं चाहिये क्योंकि राष्ट्र का जो द्रव्य है वह हमारी बुद्धि को संकुचित न कर दे।** हे राजन ! हम यह चाहते हैं कि तुम्हारे हृदय में, जितनी तुम्हारी अंतर्-इन्द्रियों में, चित्त के जगत में जितनी त्रुटियां हैं उन त्रुटियों को तुम हमें जितना भी प्रदान कर दोगे, हमें जितना भी दक्षिणा में परिणित कर दोगे उतना ही यह राष्ट्र और समाज़ पवित्र बनता चला जायेगा। हमें पवित्रता की आवश्यकता है, हमें द्रव्य की आवश्यकता नहीं है। द्रव्य तो हम परमात्मा के राष्ट्र में, वायु से ग्रहण कर लेते हैं। हम देखो, जब प्राणायाम करते हैं, खेंचरी मुद्रा में परिणित हो जाते हैं तो अपने उदर की पूर्ति कर लेते हैं। हम जब सूर्य प्राणायाम करते हैं तो सूर्य से हम उर्ज्वा को प्राप्त कर लेते हैं। जब चंद्र प्राणायाम करते हैं तो चंद्रमा से हम कांति को ग्रहण कर लेते हैं और वायु से प्राण को ले लेते हैं और प्रकृति मंडल से मन को ले करके आत्मा को उसमें वृत्त कर लेते हैं, आत्मा से चेतना को प्राप्त हो जाते हैं। हमें चेतना की आवश्यकता है और यदि हम मृत्यु से पार होना चाहते हैं तो मृत्युंजय बनने के लिये हम सदैव अध्ययन करते हैं, प्राणायाम करते हुए मन और प्राण दोनों को

एक सूत्र में ला करके परमात्मा के उस ब्रह्मसूत्र में पिरो देते हैं तो मानो देखो, मृत्युंजय बन जाते हैं। हे राजन ! हमें क्या चाहिये दक्षिणा में ? दक्षिणा का अभिप्राय केवल यह कि हमें हृदय चाहिये क्योंकि हृदय से दक्षिणा का समन्वय होता है। जैसे चाक्राणी ने याज्ञवल्क्य मुनि महाराज से कहा था कि दक्षिणाम भूतम ब्रह्मेः लोकाम। क्योंकि दक्षिणा का समन्वय हृदय से है और हृदय का समन्वय श्रद्धा से है और श्रद्धा का समन्वय दक्षिणा से स्वीकार किया गया है तो हम दक्षिणा चाहते हैं। हमें द्रव्य नहीं चाहिए, हम केवल दक्षिणा चाहते हैं।

मेरे प्यारे, रघु शांत हो गया, उनकी देवी ने कहा प्रभु ! आप क्या दक्षिणा दे सकते हो। उन्होंने कहा जो इनकी इच्छा हो, मैं अवश्य दूंगा। **यदि दक्षिणा नहीं दूंगा तो मेरा याग सम्पन्न नहीं होगा।** यदि याग सम्पन्न करना है तो मुझे दक्षिणा देनी होगी। मानो द्रव्य तो इनका रास्तम ब्रह्मे। ब्रह्मवेताओं ने कहा प्रभु द्रव्य यदि दोगे तो वह भी हमारे राष्ट्र की धरोहर है, प्रजा की धरोहर है प्रभु ! और प्रजा में हम भी हैं तो हमारी भी धरोहर मानी गई है। मानो यदि हमें वेद की पोथी दोगे तो वह पोथी भी हमारी धरोहर है परन्तु वेदों का ज्ञान हम जब अध्ययन करते हैं, उसका अध्ययन से समन्वय रहता है और अध्ययन का समन्वय मानो देखो, मन से है और मन का समन्वय प्राण से है और प्राण का समन्वय देखो हृदय से माना गया है और हृदय ही वह प्रभु की धरोहर है। वह प्रभु की धरोहर मानी गई है क्योंकि **जो हृदय की अवहेलना करता है वही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।** मेरे प्यारे देखो, राजा अपने में वर्णम् ब्रह्माः कृतम, शांत हो गया तो ब्रह्मवेताओं ने कहा हे प्रभु ! हम दक्षिणा में कुछ नहीं चाहते, केवल उद्गीत चाहते हैं। जैसे परमात्मा का यह जगत हृदय है ऐसे ही समाज, राष्ट्र का हृदय है और देखो, इस जन समूह में जो यह समाज है, उसमें एक दूसरे की भावना एक दूसरे में सूत्रित हैं। जैसे मनका है धागा है और दोनों का समन्वय हो करके माला बन जाती है प्रभु ! ऐसे हमें माला

चाहिए। **राष्ट्र में प्रत्येक मानव का सम्मान होना चाहिए।** सम्मान जब होता है जबकि राजा अपनी विद्या का सम्मान करता है, राजा अपने राष्ट्र में क्षत्रिय बल का सम्मान करता है।

इस प्रकार जब उन्होंने उद्‌गीत गाया तो राजा रघु अपने में मौन हो गया और राजा रघु ने कहा कि प्रभु जो तुम्हारी इच्छा हो मैं अवश्य दूंगा। उन्होंने कहा कि प्रभु ! हम यह चाहते हैं कि तुम्हारा जीवन मृत्यु से पार होना चाहिये, हम यही दक्षिणा में चाहते हैं। राजा ने कहा कि मेरा जीवन मृत्यु से कैसे पार होगा ? उन्होंने कहा इस परमात्मा के रचाये हुए शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियां मानी गई हैं, इन ज्ञानेन्द्रियों का जो विषय है, जैसे नेत्रों का विषय है दृष्टिपात करना, उसका विषय रूप है और अग्नि उसका देवता माना गया है परन्तु उसको संकीर्णता में न दृष्टिपात करते हुए उसे जब हम अग्नि स्वीकार कर लेंगें तो अग्नि होते ही हमारे नेत्र मृत्यु से पार हो जायेंगे। उन्होंने कहा जैसे वाणी है, वाणी मानो, अंतरिक्षम् ब्रह्मा: व्रतम, यह शब्द अंतरिक्ष से आता है। जब हम अपने को अंतरिक्ष ही स्वीकार कर रहे है तो शब्द अंतरिक्ष की आभा में परिणित हो जाता है तो मृत्यु से पार हो जाते हैं। उन्होंने कहा जैसे हमारे श्रोत्रों में शब्द आता है, दिशाओं से भ्रमण करके आता है, जब हम श्रोत्रों को दिशा स्वीकार कर लेंगे तो दिशाओं में एक-एक परमाणु गमन करता है, एक-एक परमाणु संघर्ष करता रहता है और वह जो संघर्ष करता परमाणुवाद जब दिशा बन जाती है, उसे जब दिशा स्वीकार कर लेते हैं तो हमारा जीवन अमृत बन गया और वह हम ब्रह्मण व्रत्तम, देखो हम मृत्यु से पार हो गये। हे प्रभु ! हम यह चाहते हैं कि आपकी वाणी रसोमय रहनी चाहिए परन्तु उसमें प्रत्येक प्रकार का रस होना चाहिये। उसका प्रतिनिधि जल है और जल में नाना प्रकार का स्वादन होता है। जब वह जलरूप बन जाता है तो जहाँ भी जल जाता है वहीं प्राण सत्ता देता है। तो हे राजन जब तुम्हारा जीवन प्राण सत्ता देने वाला बनेगा, वाणी तुम्हारी प्राण सत्ता देने वाली

बनेगी तो तुम मानो, ब्रह्मेः देखो, राष्ट्रम् ब्रह्माः वेत्तम, वही हमारी दक्षिणा है। **प्रत्येक इन्द्रियों का जो दोष है उसे तुम हमें प्रदान कर दो तो यही हमारी दक्षिणा है।**

मेरे प्यारे देखो, जब उन्होंने यह कहा तो राजा रघु ने मौन होकर अपनी देवी से कहा कि अब क्या किया जाये, हम इन बुद्धिमानों को क्या उत्तर दे सकते हैं। उन्होंने कहा हे देव ! आपको दक्षिणा देनी है और इन्हें लेनी है परन्तु जो इनकी इच्छा हो वह प्रदान करो। मेरे प्यारे ! राजा रघु ने कहा कि प्रभु ! मैंने यह निश्चय किया है कि लगभग एक वर्ष में, छः माह तक अपने जीवन को उत्तरायण में ले जाऊँगा और अपने राष्ट्र का पालन भी करता रहूँगा। मेरे प्यारे ! राजा रघु ने दक्षिणा में यह प्रदान कर कहा कि मैं छः माह तक अपने जीवन को उत्तरायण बनाऊँगा। उत्तरायण का अभिप्राय यह है कि जीवन को प्रकाश में ले जाऊँगा। उत्तरायण, जैसे सूर्य उदय होता है और वह प्रकाश देता चला जाता है, उर्ज्वा देता है ऐसे ही हमारा जो उत्तरायण है वह ज्ञान है, वह कर्म है। कर्म के साथ में हमारा ज्ञान हो और ज्ञान के साथ में कर्म हो तो उसके साथ जब मेरा जीवन व्यतीत होगा तो मैं अपने जीवन को उत्तरायण में ले जाऊँगा। ऋषियों ने बेटा ! वह दक्षिणा स्वीकार कर ली, स्वीकार करते उन्होंने कहा धन्य है।

आशीष

अब मेरे प्यारे, राजा रघु ने एक वाक्य कहा कि प्रभु ! मैंने आपको दक्षिणा प्रदान कर दी परन्तु मुझे आशीष क्या देना चाहोगे ? तब ऋषियों ने कहा कि हमारा जो हृदय है वह राष्ट्र के लिये है क्योंकि हृदय में सर्वत्र देवता अपना नृत्त करते रहते हैं। क्योंकि नेत्रों से प्रकाश आता है, रूप [illegible]गता [illegible] वह हृदय में रहता है और रसना से रस आता है वह भी हृदय में रहता है और श्रोत्रों से शब्द आता है, वह भी हृदय में है और इसी प्रकार पृथ्वी से गंध आती है वह भी हृदय में

है, वायु से प्रीति आती है वह भी हृदय में है तो हृदय ही तो मानो एक विशाल यज्ञशाला है। इस यज्ञशाला को हम आपको समर्पित करना चाहते हैं। मेरे पुत्रो ! यह वाक्य जब उन्होंने उद्गीत रूप में गाया तो राजा रघु मौन हो गया और उन्होंने ऋषि मुनियों के चरणों को स्पर्श किया। उन्होंने कहा धन्य है प्रभु ! तो मेरे प्यारे देखो, दक्षिणाम भूतम ब्रह्माः वर्त्तम, वेद मंत्र कहता है, हे यजमान ! तू दक्षिणा प्रदान कर, तू पुरोहित को दक्षिणा दे और पुरोहित कहता है, मम ब्रहे व्रत्तम देवो देवः ववस्ति, हे यजमान ! तू मुझे दक्षिणा प्रदान कर। तो मेरे प्यारे, जब इस प्रकार के विचार राजा के राष्ट्र में होते हैं, याग के जैसे कर्मो में होते हैं तो राजा का राष्ट्र पवित्रता को प्राप्त हो जाता है, ज्ञानियों का राष्ट्र बन जाता है और जिस राजा के राष्ट्र में बुद्धिजीवी पुरुष नहीं होते, आध्यात्मिकवेता नहीं होते उस राजा के राष्ट्र में अंधकार छा जाता है। वह अंधकार छा करके अंधकार में उग्रवाद है, प्रदूषण है, उस राजा के राष्ट्र में यह समाज में महानता नहीं हो पाती।

बेटा ! बहुत पुरातन काल की चर्चायें मुझे प्रायः स्मरण आती रहती हैं। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे आज मैं राजा रघु की उस यज्ञशाला में विद्यमान हूँ , ऐसा मन प्रसन्नता को प्राप्त हो रहा है। विचार विनिमय क्या, मुनिवरो देखो, वह दक्षिणाम भूतम ब्रह्माः उन्होंने दक्षिणा प्रदान करके कहा प्रभु आपका हृदय मेरे साथ है तो मैं सदैव अपने जीवन को उत्तरायण बनाऊँगा और दक्षिणायन को त्यागने का प्रयास करूँगा। मेरे प्यारे, इसी प्रकार मानव को विचारना चाहिये कि हम अपने में अपनेपन का व्यवधान करते रहें, विचार विनिमय करते रहें। बेटा ! बुद्धिमानों का हृदय राष्ट्र के लिये होता है, वह समाज के लिये है, अपनी इन्द्रियों को एक सूत्र में लाने का प्रयास करके वही तो ब्रह्म की आभा को चरने वाले हैं। वही ब्रह्मवर्चस कहलाते हैं और वे ब्रह्मवर्चोसि बन करके इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करते हैं। आओ मेरे प्यारे, आज का हमारा वाक् क्या कह रहा है कि हम

परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते हुए कर्मकांड की पद्धतियों को जानने का प्रयास करें। कर्मकांड की पद्धतियां हमारी क्या कहती है ? कर्मकांड यह नहीं कहता कि तुम अपने में उद्धित कर्म करो या उग्रवाद के कर्म करो। **कर्म तुम्हें ज्ञान के साथ करना है।** तुम्हारा कर्म और ज्ञान दोनों एक सूत्र में परिणित होगें तो तुम महादेव की उपाधि को प्राप्त कर सकोगे, तुम इन्द्र बनोगे और इन्द्र बन करके जमदग्न अस्तनम ब्रह्माः तुम जमदग्नि बन करके अग्नि के सदृश्य बन जाओगे। अत्रि बन करके तुम जैसे प्राण इस शरीर की आभा को चरता रहता है, निगलता रहता है, ऐसे ही तुम दधिची की भांति बनोगे। इस प्रकार तुम्हारा जीवन महानता में गमन करना चाहिये।

आज का हमारा वाक् क्या कह रहा है ? वेद मंत्र कहता है कि मानव का जीवन नाना प्रकार की उपाधियों से अलंकृत रहा है, राजा भी एक उपाधि है। राजा की उपाधि से उसे अलंकृत किया जाता है जिसका हृदय, मन, मस्तिष्क एक सूत्र में सूत्रित होता है इसी प्रकार मानव अपने में मानवीयता को विचार विनिमय करता हुआ इस संसार सागर से आध्यात्मिकवाद को ले करके अपने राष्ट्र को ऊँचा बना सकता है। जब आध्यात्मिक पुरुष राजा के राष्ट्र में होते हैं तो राजा अपने में महान बन जाता है। बेटा ! राजा के राष्ट्र में पदम् होना चाहिये, चक्र होना चाहिये, शंख ध्वनि और अमृतम ब्रह्माः मंगलम ब्रहे वस्तुतम, गदा होनी चाहिये। कर्मकांड की पद्धति में यह चार नियमावली कहलाई जाती हैं परन्तु चारों को संगठित करके एक ही सूत्र में पिरोया जाता है। उसका केवल एक ही मंतव्य है कि मानव अपनी शंख ध्वनि से ध्वनित हो जाये। वही ध्वनि वेद मंत्रों में जटा पाठ में है, वही ध्वनि घन पाठ में है, उस ध्वनि का अवध्यान करता हुआ उसका ध्यान अंतरिक्ष में आव्यस्थित हो जाता है और उसी ध्वनि को जब साधक अपने में करता है तो मस्तिष्क में जो अनहाद ध्वनि होती है उसमें योगीजन ध्यानावस्थित हो जाते हैं और स्वर संगम में ध्वनित होती उस ध्वनि

को अपने में धारण करते रहते हैं। उसी से व्याकरण है, उसी से जीवन की धारायें हैं। वेद मंत्रों का उद्‌गीत वही गा सकता है जो अपने मस्तिष्क की ध्वनि को और बाह्य ध्वनि को एक सूत्र में लाने का प्रयास करता है।

बेटा देखो, आज का विचार विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए , देव की महिमा का गुणगान गाते हुए , अपने ऋषितव को प्राप्त करते रहें और यज्ञ को महादेव स्वीकार करके, मानो देखो, हमारा हृदय ही तो यज्ञशाला है जिसमें सब देवता वास करते हैं। हृदय ही तो यज्ञशाला है जिसमें परमात्मा की यौगिकता का हमें दर्शन होता है। यह है बेटा ! आज का वाक् अब मुझे समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चायें तुम्हें कल प्रकट करूँगा, आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन-पाठन होगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय यह कि हमारा जीवन अलंकृतों से परिणित होना चाहिये।

महाराजा रघु का याग - ६

देखो मुनिवरो, आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि वे परमपिता महिमावादी हैं और उसकी महिमा का एक-एक परमाणु अपने में गुणगान गा रहा है। जो भी हमें दृष्टिपात आने वाला जगत है, चाहे वह जड़ रूप में है चाहे वह चेतन्य रूप में है परन्तु वह उस परमपिता परमात्मा का यशोगान गा रहा है। इसीलिये हमारा एक-एक वेद मन्त्र उस परमपिता परमात्मा की महिमा का बखान करता है अथवा उसके गुणों का वर्णन करता रहता है तो हम उस परमपिता परमात्मा की महिमा का सदैव गुणगान गाते रहें। वह परमपिता परमात्मा एक-एक कण-कण में विद्यमान है, एक-एक परमाणु उसका यशोगान गा रहा है। प्रत्येक लोक-लोकान्तर एक माला का समूह बना हुआ है जिस मालाओं की चर्चा बेटा, मैं परम्परागतों से ही अपने विचारों में प्रस्तुत करता रहा हूँ और हम यह विचार देते रहे हैं कि यह संसार एक माला के सदृश्य है। यहाँ प्रत्येक लोक-लोकान्तर एक दूसरे की माला बना हुआ है और वह माला जैसे एक पांडित्य अपने में जैसे माला पाठ का गान गाता है, माला पाठ में अपने स्वरों का व्यंजन करता है अथवा स्वरों में जैसे माला पाठ, जटा पाठ गाता है तो वह जो माला पाठ है वही तो अपने में विशिष्ट माना गया है। विचार आता रहता है कि हम उस माला को जानने

वाले बनें क्योंकि यह परमात्मा का जो अनन्यमयी जगत है, जिसको अनन्तमयी कहा जाता है, यह एक माला के सदृश्य है। इस माला को जानना, इस माला को अपने में धारण करना ही हमारा कर्त्तव्यवाद माना जाता है।

मेरे पुत्रो, आज का हमारा वेद मन्त्र उस परमपिता परमात्मा का यशोगान गा रहा है, वेद मन्त्र अपने में अपनेपन की आभा का वर्णन कर रहा है। बेटा देखो, जिस भी काल में ऋषि मुनि अपनी स्थलियों पर विद्यमान होते रहे हैं उसी काल में वे वेद मन्त्रों के उपर अन्वेषण करते रहे। एक-एक वेद मन्त्र में बेटा, ब्रह्माण्ड की प्रतिभा का प्रायः वर्णन करते रहे हैं, नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों की प्रतिभा का वर्णन और अपनी आभा में रत्त होते रहे हैं। मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में कहा कि हमारे ऋषि मुनियों की दो प्रकार की मान्यतायें परम्परागतों से रही हैं। एक मान्यता यह रही कि जिसे भौतिक विज्ञान कहा करते हैं एक आध्यात्मिक माना गया है क्योंकि जितने भी आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ता पुरुष हैं वे आध्यात्मिक गान गा करके अपनी आत्मा को जानने का प्रयास करते रहे क्योंकि पंच महाभूतों के लोक में आत्मा अपना वास करने वाला है और एक भौतिक विज्ञान है जिस भौतिकवाद के रूप में यह सर्वत्र जगत हमें दृष्टिपात आता है। यह जो नाना ब्रह्माण्ड हैं, जो नाना लोक-लोकान्तर हैं और लोक-लोकान्तर एक दूसरे को जो प्रभावित कर रहा है, एक दूसरे का जो माला बना हुआ है तो मानो देखो, वह भौतिक विज्ञान के रूप में वर्णित रहा है। प्रत्येक ऋषि मुनि जब भी अपनी स्थलियों में विद्यमान रहे हैं और विद्यमान हो करके उनका अन्वेषण चला है तो एक वेद मन्त्र को लिया और उन्होंने बेटा, जैसे परमाणुओं का समूह यह मानव शरीर है, एक-एक परमाणु देखो, एक-एक माला का क्रिया कलाप कर रहा है इसी प्रकार यह जो नाना प्रकार के लोक-लोकान्तर हमें दृष्टिपात आते हैं ये लोक-लोकान्तर एक दूसरे की माला बनी हुई हैं।

ब्रह्माण्ड की माला

माला की चर्चा करते हुए शिकामकेतु उद्दालक मुनि से ब्रह्मचारियों ने यह कहा कि प्रभु हम माला के सम्बन्ध में जानना चाहते हैं। तो मेरे प्यारे, शिकामकेतु उद्दालक ने कहा कि तुम विज्ञान के माध्यम से जानना/चाहते हो या व्याख्या के रूप में जानना चाहते हो। उन्होंने कहा प्रभु हम विज्ञान के रूप में ही जानना चाहते हैं। तो शिकामकेतु उद्दालक ने बेटा, माला के रूप में कुछ वर्णन कराया कि मानो ब्रह्मेः, मेरी जो यह विज्ञानशाला तुम्हें दृष्टिपात आ रही है इसमें नाना ब्रह्मचारी अपना अन्वेषण करते हैं और विज्ञानशाला में अन्वेषण करते मानो, एक दूसरे की माला को जानने का प्रयास करते रहे हैं। मेरी विज्ञानशाला में तीस लाख पृथ्वियों का समूह माना गया है। अब मैं इन पृथ्वियों को भी तुम्हें इकाई में वर्णन करना चाहता हूँ। इसका कोई स्वरूप ऐसा सूक्ष्म से सूक्ष्म बन जाता है जैसे एक परमाणु है, अणु व्रणम् ब्रवे कृत्वम|देव|नात्वाला |दृष्टि, मानो देखो, परमाणु के रूप में तुम्हें दृष्टिपात आने लगेगा। मेरे प्यारे, ब्रह्मचारियों ने कहा प्रभु , वह वर्णन कराईये। उन्होंने कहा हे ब्रह्मचारियो, तुम्हें किसी काल में अभिमान आता है। उन्होंने कहा प्रभु अभिमान से तो हमारा शरीर ही कटिबद्ध रहता है। क्योंकि 'अहंकाराम् भूतम ब्रह्मेः व्रणस्सुतम' यह अभिमान नहीं इसे अहंकार कहते हैं, क्योंकि अहंकार से यह संसार एक दूसरे में सुगठित रहता है। जैसे आंतरिक जगत में जब जाते है तो सबसे प्रथम मन का व्यापार आता है और मन के व्यापार के पश्चात चित्त और अहंकार की उसमें प्रतिष्ठा प्रतीत होने लगती है। तो मेरे प्यारे, इसीलिए अहंकार से हम कटिबद्ध रहते हैं। जब ब्रह्मचारियों ने यह कहा तो महर्षि शिकामकेतु उद्दालक ने कहा कि जो अहंकार है वह सामान्य है जो परमाणुओं से सुगठित रहता है। स्थूल रूप से भी तुम्हें अभिमान होता है ? उन्होंने कहा प्रभु ! हम स्थूल को नहीं जान पाये हैं। उन्होंने कहा, मानो तुम्हें अपनी किसी विद्या पर अभिमान हो या शरीर के गौरव पर अभिमान हो या तुम्हारे क्रियाकलाप में तुम्हें अभिमान

हो या शिक्षा का अभिमान हो। उन्होंने कहा प्रभु ! यह भी अभिमान हो सकता है। ऋषि ने कहा कि परन्तु देखो, यह जो तुम्हारा अभिमान है यह मिथ्या है क्योंकि जब परमपिता परमात्मा ने एक अहंकार की प्रतिभा का स्रोत्र बनाया है, एक दूसरे को सुगठित रहना है, एक दूसरे को संगतिकरण में रहना है। तो मेरे प्यारे, ब्रह्मचारियों ने कहा प्रभु ! यह तो हमने स्वीकार कर लिया है परन्तु हम जानना चाहते हैं कि आप क्या उच्चारण करना चाहते हैं ?

शिकामकेतु उद्दालक ने कहा, हे ब्रह्मचारियों मैं तुम्हें उच्चारण करना चाहता हूँ कि एक मानव अभिमान करता है, वह चाहे द्रव्य का अभिमान करता है, चाहे वह अपनी विद्या का अभिमान करता है, चाहे वह अपनी द्रव्याम् भूतम देखो, अपनी लोकप्रियता का अभिमान करता है, वह जो अभिमान है वह उसका व्याहरता में मुझे दृष्टिपात आता है। जब मैं इसके उपर अन्वेषण करता हूँ तो विचार आता है कि देखो यदि विद्या से अभिमान करता है तो परमात्मा की जो विद्या है वह अनन्तता में गमन करती रहती है। परमात्मा अभिमानी नहीं है क्योंकि वह विद्वता में परिपूर्ण है। विद्या ही मानो उसका आयतन है, उसका गृह है, उसका सदन है परन्तु देखो, वह उसका अभिमान नहीं करता। इसलिये परमात्मा को हमें जानना चाहिये। उसके पश्चात् अवम ब्रह्मेः क्रतम देवत्वाम् ब्रव्हे व्रणाहाः, तो वेद का आचार्य यह कहता है कि यदि तुम यह चाहते हो कि मुझे द्रव्य का अभिमान करना है तो सब द्रव्य का तो परमात्मा स्वामी है। जितना भी यह पृथ्वी मंडल है पृथ्वी के गर्भ में कहीं स्वर्ण के परमाणु हैं, कहीं रत्नों की धातु विद्यमान हैं, नाना प्रकार के जलों का भी वह शोधन किरणों के द्वारा करने वाला है और उसी जल की शक्ति से वाहन अपनी क्रिया में गमन करता रहता है। हे मानव, यदि तू द्रव्य का अभिमान करता है तो सबसे उर्ध्वा में द्रव्यपति वह परमपिता परमात्मा है। इसलिये तुम अभिमान किसका करते हो, कौन सी वस्तु ऐसी है जिसका ब्रह्मचारी जनो तुम्हें अभिमान करना है। मानो देखो, वह द्रव्यपति है, वह इस पृथ्वी का स्वामी है, इस पृथ्वी को देखो, लक्ष्मी कहते

हैं और उस परमपिता परमात्मा को विष्णु कहते हैं क्योंकि इसका स्वामी होने से वह लक्ष्मीपति है। तो जब परमात्मा लक्ष्मीपति है तो हमको लक्ष्मी में कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु यदि विद्या में अभिमान नहीं है, काया पर अभिमान नहीं है तो परमात्मा का जो यह स्वरूप है, जो स्थूल रूप में हमें यह ब्रह्माण्ड दृष्टिपात आ रहा है, यह इतना अनंतमयी ब्रह्माण्ड है, इतना अनन्तमयी कि देखो, एक इकाई में तुम्हे ले जाऊँ तो बेटा, तुम्हें ऐसा प्रतीत होगा कि गणना भी समाप्त हो जाती है। जहाँ गणना भी समाप्त हो जाती है तो कौन सा ऐसा क्रिया कलाप है जहाँ हम अपने में गौरव स्वीकार कर सकें। मानो परमपिता परमात्मा का जो यह अनन्तमयी ब्रह्माण्ड है, उसका जो क्रिया कलाप है, उसका जो वृत्त कहलाया जाता है वह इतना महान है कि उसके उपर विचार-विनिमय कर मानव अपने में मौन हो जाता है।

आज मैं तुम्हें मौन की चर्चा प्रगट करूँ जैसे हम सूर्य मंडल के उपर या पृथ्वियों के उपर अन्वेषण करते है। शिकामकेतु उद्दालक ने ब्रह्मचारियों के मध्य में कहा कि हे ब्रह्मचारियो जब हम विचारते रहते हैं यह पृथ्वियों की अंतरिक्ष में गणना करने लगते हैं, वेद मन्त्र को ले करके गणना में लग जाते हैं तो गणना इकाई में रह जाती है, मानो ३० लाख पृथ्वियां अमृतम हम गणना में लाये हैं। इसी गणना की एक माला बनती है और उस माला को सूर्य अपने में धारण कर लेता है। तो **यह सूर्य इतना विशाल मंडल है जिसमें ३० लाख पृथ्वियों की माला उसमें समाहित हो जाती है।** जब इस प्रकार हम विचारने लगते हैं कि उसकी जो विद्या है, उसकी जो रचना है वह कितनी अनुपम है तो इसके उपर जाते हैं तो माला का एक स्रोत्र बन गया है। विचार आता है बेटा, कि इस सूर्य मंडल पर ऋषि मुनि विचारने लगता है कि यह सूर्य क्या है जो इतना विशाल मंडल है तो बेटा, सूर्य की गणना करने लगे। गणना करते-करते ऋषि समाधिष्ठ हो जाता है, वह अपने परमाणुओं का सम्मिलान करता है तो उस विज्ञानवेत्ता को एक सहस्त्र सूर्य उसको दृष्टिपात आने लगते

हैं और **एक सहस्त्र सूर्यों** की जब गणना करता है तो सूर्यों की एक माला बन करके, मानो बृहस्पति उसे अपने में धारण करता है। बृहस्पति इतना विशाल मंडल है कि जो विचारने वाला मानव विचारता है, ऋषि जन समाधिष्ठ हो करके मन और प्राण को एकाग्र करके प्राणों का उसमें पुट लगा करके अपने में उसका संशोधन करते हैं तो मुनिवरो देखो, वह जो बृहस्पति है वह इतना विशाल मंडल है कि एक सहस्त्र सूर्य उसमें समाहित हो जाते हैं और **एक सहस्त्र बृहस्पतियों की माला** को जब धारण कर आरुणी मंडल अपने में धारयामि बन जाता है।-तो बेटा यह सर्वत्र संसार तुम्हें इकाई में दृष्टिपात आयेगा। इतना विशाल उस प्रभु का ज्ञान है, उसका क्रिया कलाप है कि उसके क्रिया कलाप को जानने वाला मुनिवरो देखो, जानता रहता है, अनुसंधान करता रहता है कई जीवन समाप्त हो जाते हैं वह सृष्टि को नहीं जान पाता। ऐसा अनुभव होता रहता है, विचार आता रहता है मेरे पुत्रो कि हम किसके उपर, अपनी रचना के उपर कैसे अभिमान करें और द्रव्याम भूतम मम ब्रहे वृत्तम देवाः।

मेरे प्यारे देखो, हमारे यहाँ ऐसा हमें प्रतीत होता रहा है कि **एक सहस्त्र आरुणी मंडलों** की जब माला बनती है तो ध्रुव उसको अपने में धारण करता है। मेरे प्यारे, **एक सहस्त्र ध्रुवो की माला** बनती है उसको स्वाति नक्षत्र अपने में धारण करता है। **एक सहस्त्र स्वाति नक्षत्रों की माला** बनती है उसको पुष्य नक्षत्र अपने में धारण करता है **एक सहस्त्र पुष्य नक्षत्रों की माला** बनती है और माला को धारण करने वाला मेरे पुत्रो, अमृतम ब्रह्माः वर्णस्सुतेः वह अचंग मंडल अपने में धारण करता है। **एक सहस्त्र अचंग मंडलों की माला** बन करके **अमृते मंडल** अपने में धारण करने लगता है। मेरे प्यारे, जब धारयामि बनते रहते हैं, धारणाम् ब्रह्माः व्रणम, अंतिम जो सूत्र है वह, **इस माला का अंतिम मनका गंधर्व माना गया है।** विचार आता है मुनिवरो, **इतने मंडलों का, इतनी मालाओं का एक सौर मंडल बनता है।** गणना में लाईये, इसकी कितनी विचित्र गणना है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रत्येक

मानो अपनी इकाई में रमण कर रहा है। वह परमपिता परमात्मा कितना विशाल विज्ञानवेता है। वैज्ञानिक जन सूक्ष्म से यंत्रों को जान करके अभिमानित हो जाते हैं, राष्ट्र में अपने को गौरव स्वीकार करते हैं परन्तु परमात्मा के विज्ञान को विचारते-विचारे बेटा, अंत में बुद्धि का माध्यम भी समाप्त हो जाता है।

मेरे प्यारे देखो, मुझे स्मरण आता रहता है कि शिकामकेतु उद्दालक मुनि ने जब इस प्रकार अपनी वार्ता प्रगट की तो ब्रह्मचारी मौन हो गये और ब्रह्मचारियों के अंतर्हृदय से यह वाणी उद्‌गीत गाने लगी कि महाराज और कुछ उच्चारण कीजिये। तो उन्होंने कहा कि इतने मंडलों का एक सौर मंडल बना है और एक वेद मन्त्र मैं तुम्हें उच्चारण कर रहा हूँ। 'सहस्त्रम भूत प्रव्हा लोकम ब्रहे आकाश अव्रही, अमृतम् तलम देवत्वाम लोकाहाम्।' उन्होंने कहा यह वेद की आख्यिका है, वेद का मंत्र है। वेद का मन्त्र यह कहता है कि मानव जब मनस्तव और प्राणत्व के उपर चिन्तन करते हैं तो चिन्तन करते हम इतनी गंभीर मुद्रा में, परमात्मा के विज्ञान में, भौतिक विज्ञान में रत्त हो जाते हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि मानो यह सौर मंडल हैं और इतने मंडलों का एक सौर मंडल बना है तो मानम ब्रह्मेः देखो, **लगभग १ अरब ६६ करोड़ २६ लाख ४६ हजार ५६२ सौर मंडलों से एक आकाश गंगा का निर्माण होता है।** इसी प्रकार एक आकाश गंगाओं का समूह है, यह प्रभु का विज्ञान है। प्रभु के विज्ञान में इतनी अनन्तता है कि उसके उपर विचार विनिमय करना हमारे लिये एक अस्वत कहा जाता है। मैंने कई कालों में बेटा, यह वार्ता प्रगट की हैं आज भी मैं तुम्हें उसी क्षेत्र में ले गया हूँ। मुझे बारम्बार जब ऋषियों की वार्तायें स्मरण आने लगती हैं तो प्रायः हृदय गद्‌गद् हो जाता है। मानव को परमपिता परमात्मा की इस रचना के उपर मग्न होना चाहिए और उसके उपर हमें अंतर्हृदय से प्रसन्न होना चाहिए और प्रसन्न होकर उसके उपर विचार विनिमय हो। तो इस प्रकार एक आकाश गंगा का ऋषि ने वर्णन किया परन्तु ब्रह्मचारियों ने कहा प्रभु और उच्चारण कीजिये तो ब्रह्मचारियों के उत्साह को दृष्टिपात करते हुए ऋषि

शिकामकेतु उद्दालक ने कहा, अम्ब्रवे व्रत्तम देवत्वस्सुता वर्णी देवत्वाम भूकम ब्रह्मः, वेद का आचार्य कहता है कि हे ब्रह्मचारियो देखो, इस प्रकार **१ अरब ९६ करोड़ २६ लाख ४६ हजार ५६१ के लगभग आकाश गंगाओं की एक अवन्तिका बनती है।** अवन्तिका बन गई तो मानव इकाई में चला गया है। गणना भी इकाई में चली जाती है परन्तु इस प्रकार जब विचार विनिमय करने वाला ऋषि कहता है, हे ब्रह्मचारियो तुम परमात्मा के ब्रह्माण्ड को अथवा उसके विज्ञानमय जगत को दृष्टिपात करने का सौभाग्य अपने में स्वीकार करो और एक-एक वेद मंत्र के उपर अध्ययन करते चले जाओ। मंत्र ऐसे हैं जो जितना मानव अध्ययन कर लेता है, अध्ययन करते-करते अंतर्आत्मा में प्रवेश हो जाता है, अंतर्आत्मा के उपर जब विचार करने लगता है तो बेटा, वह यौगिक क्षेत्र में प्रवेश हो जाता है।

यह तो मैं भौतिक विज्ञान का चर्चा तुम्हें प्रगट कर रहा हूँ कि ऋषि मुनियों ने कितना अन्वेषण किया है, कितना विचारा है। जब शिकामकेतु उद्दालक ने कहा कि भगवन् **पौने दो अरब अवन्तिकाओं की एक निहारिका बनती है।** इस पर ऋषि अपने में मौन हो जाते हैं और वे कहते हैं कि परमात्मा का जगत अनन्नम् ब्रह्माः अनन्नम् ब्रह्माण्डम् ब्रहे क्रतम देवत्व प्रव्ह्म कि वह परमपिता परमात्मा का जगत तो अनन्तमयी माना गया है। इसीलिये परमपिता परमात्मा को अपनी माला बना करके हमें अपने में मौन हो जाना चाहिये। मेरे प्यारे देखो, मानव का कोई भी क्रिया कलाप ऐसा नहीं है जब परमात्मा के क्रिया कलापों से हम उसकी तुलना करते हैं तो मानव न तो संसार में अभिमान ही कर सकता है न मानव संसार में द्रव्य का अभिमान कर सकता है क्योंकि वह लक्ष्मीपति है और न वैज्ञानिक अपने में अभिमान करता है कि हमने सब कुछ जान लिया है अरे, परमात्मा का विज्ञान तो इतना अनन्त है कि वैज्ञानिक जन जानते-जानते विज्ञान की वैज्ञानिक इकाई में चले जाते है तो और भी शेष रह जाता है तो इसीलिये हम परमपिता परमात्मा की महिमा अथवा उसका उद्गीत गाने वाले जगत के उपर विचार विनिमय करें।

बेटा आज इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं, आज का हमारा वेद मंत्र यह कह रहा था, मालम ब्रह्मेः वर्णनम् । इसी प्रकार पांडित्व जब अपनी एकांत स्थलियों में विद्यमान होता है तो माला पाठ गाता है कि माला का कर्त्तम बड़ा विचित्र माना गया है। मेरे प्यारे देखो, माता के गर्भस्थल में नाना परमाणुओं की एक माला बनती है और उस माला को धारण करने वाला एक-एक मंडलाम भूतम माना गया है। मुनिवरो देखो, वह मालाओं का सदृश्य समूह माना गया है जिसकी माता के गर्भ स्थल में रचना होती है। वह रचनाकार परमपिता परमात्मा है जो इस संसार का, माला का स्वामित्व करने वाला है। इसी प्रकार एक-एक परमाणु की माला है, एक-एक अणु की माला बनती है। तो वह माला बनते-बनते मानव का शरीर बन जाता है। कहीं बुद्धि का निर्माण है और बुद्धि भी कई प्रकार की मानी गई है। मन की नाना प्रकार की तरंगों में तरंगित होने वाला जगत अपने में तरंगित हो जाता है। तो विचारने वाला विचारता है कि हम परमपिता परमात्मा के अनन्तमयी जगत को जानने का प्रयास करें, अनन्तमयी जगत को जानेगा वही जो आत्मा को जानने वाला है जो मानो अपने में ब्रह्महव्याम् भूतम ब्रह्माः वेदाम् , कहता है कि हे मानव तू ब्रह्म हत्या करने वाला न बन यदि तू ब्रह्म की प्रेरणा को अपने हृदय से दूरी कर देगा तो तू ब्रह्म हत्यारा कहलायेगा। मेरे प्यारे देखो, ऋषि कहता है कि तू ब्रह्मणम् ब्रह्माः ब्रह्मणे देवत्वाम लोकाम, तू अपने हृदय से ब्रह्म की प्रेरणा को स्वीकार कर और उसी प्रेरणा के आधार पर अपने क्रियाकलापों को प्रारम्भ कर जिससे तेरा जीवन यौगिक हो जाये और तेरे जीवन में विवेक हो करके, तू संसार का शिरोमणि प्राणी बन करके परमात्मा की सृष्टि को जानने वाला बन।

बेटा ! मैं आज इस सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट करने नहीं आया हूँ विचार विनिमय यह कि यह तो अनन्तमयी जगत है। मैं इसके उपर विवेचना कि परमाणु कैसे संघर्ष करता है, यह चर्चा तो मैंने तुम्हें पूर्व काल में भी प्रगट की हैं। आज भी मैं मालाओं की चर्चा करने लगा था

परन्तु देखो, नाना प्रकार के लोक लोकान्तर एक दूसरे में ओत-प्रोत हो रहे हैं जैसे मानव, मानव में ओत-प्रोत है, एक दूसरे में प्रतिष्ठा को प्राप्त कर रहा है तो हमें इस ज्ञान और विज्ञान के उपर विचार विनिमय करना चाहिए। आओ मेरे प्यारे देखो, आज मैं तुम्हें दूरी नहीं ले जा रहा हूँ, आज का विचार केवल यह है कि हम अपने में अपनेपन की प्रतिभा को जानने वाले बनें। मेरे प्यारे देखो, आज मैं बहुत दूरी नहीं जाना चाहता हूँ , विचार विनिमय क्या कि पृथ्वी के उपर नाना प्रकार का संघर्ष होता रहा है। सूर्य मंडल में भी नाना संघर्ष होते रहते हैं, चन्द्रमा में भी नाना प्रकार के परमाणुओं के संघर्ष होते रहते हैं। इसी प्रकार मंगल में भी और बुद्ध इत्यादि लोकों में भी नाना प्रकार के संघर्ष होते रहते हैं परन्तु उन संघर्षों की चर्चा क्या, मानो देखो यह तो रचना का स्वभाव है। **संघर्ष होना ही रचना का स्वभाव माना गया है।** कोई वस्तु रचती है तो उस पर संघर्ष होता रहता है और वह किसी काल में शुद्ध-विशुद्ध रूप में, किसी काल में वही दुरिता के रूप में परिणित हो जाता है। आओ मेरे प्यारे, आज का विचार क्या कि मानव को न तो काया के उपर अभिमान करना चाहिए कि मैं इतना स्वाभिमानी हूँ क्योंकि परमपिता परमात्मा की रचना बड़ी अनन्तमयी है, परमात्मा का जगत विज्ञान से ओत-प्रोत है। वैज्ञानिक जन उस परमपिता परमात्मा की प्रतिभा को परमाणुओं के, मानो एक दूसरी तरंगों को जान करके यंत्रों का निर्माण करते हैं और द्यौ में प्रवेश हो जाते हैं। उस द्यौ में रत्त होने वाला अपने में रत्तता को रमण करता रहता है।

पवित्र अन्न

आओ मेरे प्यारे देखो हमारा विचार क्या, आज मैं तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ बेटा , जहाँ राजा रघु का वह याग प्रारम्भ हो रहा था। मेरे प्यारे देखो, राजा रघु के याग में, बारम्बार मुझे ऐसा प्रतीत होता रहता है जैसे हम उस याग में विद्यमान हों और मानो परमात्मा दृष्टा बना हुआ है

और परमात्मा की वाणी का हम बखान कर रहे हों, ऐसा हमें प्रतीत होता रहता है। जब **राजा रघु का याग ६ माह तक प्रारम्भ रहा** और सर्वांग याग उन्होंने किया कि जितना उनके द्वार द्रव्य था अथवा गृह में स्वर्ण था, वह सर्व उन्होंने द्रव्य प्रव्हाम् ब्रहे, सब याग में परिणित कर दिया। एक समय जब वह याग सम्पन्न होने लगा, सम्पन्न होने के पश्चात् राजा अपने राष्ट्र के गौ इत्यादियों को दान देने लगे। दानाम् दक्षिणम ब्रह्माः देखो, दक्षिणा भी उन्होंने दी तो दक्षिणा भी ऋषियों ने स्वीकार नहीं की। ऋषियों ने कहा हे प्रभु , मुझे तो वह दक्षिणा चाहिये जो दक्षिणा हमने स्वीकार करनी है। राजा से यही कहा कि तुम्हारा राष्ट्र पवित्र होना चाहिये, तुम्हारे राष्ट्र में महानता का जन्म होना चाहिए। तो राजा रघु स्वयं अपने में कृषि कला करते थे, **वे कृषि कला-कौशल करके उस अन्न को पान करते जिससे बुद्धि पवित्र हो जाती।** क्योंकि प्रजा को और प्रजा के वैभव को जब राजा अपने उपयोग में लाने लगता है जानो कि उस राजा की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और राष्ट्र की परम्परा नष्ट हो जाती है। इसीलिए हमारे यहाँ यह माना गया है कि अमृतम ब्रहे, राजा स्वयं कला-कौशल करके अपने राष्ट्र का पालन करे परन्तु ऋषि मुनि उस अन्न को ग्रहण नहीं करते थे जो राजाओं के यहाँ सम्मिलन होता।

देखो, महाराजा अश्वपति के यहाँ एक समय हमने यह विचार बनाया कि पूज्यपाद गुरुदेव के समीप हम चलते हैं और महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में भ्रमण करेंगे। महाराजा अश्वपति के राष्ट्र में पहुँचे तो महाराजा ने ऋषि का स्वागत किया और स्वागत करने के पश्चात उन्होंने कुछ अन्न इत्यादि को लाने का प्रयास किया तो ऋषियों ने कहा कि नहीं भगवन् हम तुम्हारे अन्न को ग्रहण नहीं करेंगे। उन्होंने कहा भगवन् ! क्यों नहीं करोगे ? कि तुम्हारा राष्ट्र का अन्न है और राष्ट्र का जो अन्न होता है वह दूषित है वह रजोगुण, तमोगुण से सना हुआ अन्न होता है और **रजोगुण, तमोगुण से सने अन्न को पान करने से हमारा ऋषित्व समाप्त हो जायेगा।** हम अपनी बुद्धि

को अमृत में ही लाना चाहते हैं। तो महाराजा अश्वपति की देवी ने नत-मस्तक हो करके कहा कि प्रभु हमारा जो अन्न है वह हम स्वयं कला-कौशल करते हैं और उसके बदले जो अन्न आता है उसे प्रभु , हम पान करते हैं और उसी को हमारा अतिथि पान करता है। आप हमारे अतिथि हैं अतिथिपने को यदि हम स्वीकार नहीं करेंगे तो हम पाप के पात्र बनेंगे। हे प्रभु , इस अन्न को पाईये। मेरे प्यारे देखो, ऋषियों ने जब उसको दृष्टिपात किया कि किस प्रकार का अन्न है तो उसको उन्होंने पान किया। उसे पान करके उनकी बुद्धि विचित्र बनी रही। तो विचार विनिमय क्या कि राजा की बुद्धि जब पवित्र होती है जबकि राजा परमात्मा को जानने वाला, परमात्मा के ज्ञान में जब विवेक रहता है। तो विवेकी ही राजा बनना चाहिए , जो ब्रह्मवेत्ता है जो यह जानता है कि मुझे स्वयं कला-कौशल करके राष्ट्र के अन्न को ग्रहण नहीं करना है। यह तो प्रजा का राष्ट्र है, यह तो मानो देवताओं की धरोहर है मेरे द्वार, मैं इसका रक्षक हूँ और मेरा जो अन्नाद है जिससे मेरा पंच महाभूतों का शरीर विचित्र बनेगा तो मेरा स्वयं पुरुषार्थ होना चाहिए।

इसी प्रकार राजा रघु ने यह वाक् कहा कि प्रभु मैं भी अपने में कला-कौशल करता हूँ। हे प्रभु , उस अन्न को मैं पान करता हूँ क्योंकि अन्नाम् भूतम ब्रह्माः। जैसे यज्ञशाला में हूत करने वाला यजमान जब विचारक होता है, आहुति देता है शुद्ध हृदय से तो वही आहुति अग्नि में जाती है, वही आहुति अग्नि से उत्तिष्ठित हो करके सूर्य की किरणें अपने में ले जाती हैं और वही चन्द्रमा को प्राप्त होती हैं। चन्द्रमा उसको प्राप्त करके समुद्रों से जलों का उत्थान करता है और जलों का उत्थान हो करके, मेघ मंडलों से वृष्टि होती है, उसी से अन्नाद होता है। मानो देखो, इसी प्रकार ब्रह्मणे क्रत्तम् देवाः तो सूर्य अपने में धारण करने वाला द्यौ को प्राप्त होता है। वह नाना प्रकार की विशुद्ध उर्ज्या देता है जिससे दूषित वायुमंडल को अपने में सिंचन करता है और उसी को वह प्रदान करता हुआ सूर्य अपने में महान अग्नम् ब्रह्माः, देखो अग्नि

देवताओं का मुख माना गया है। तो इसी प्रकार यजमान जितना भी हृदय से शुद्ध पवित्र निष्काम कर्म से याग करता है वही देवताओं को प्राप्त हो करके वही देवता हमारे मानव शरीर में क्रिया-कलाप करते हैं जिसका यह पंच महाभूत है और पंचमहाभूतों का लोक ही मानो आत्मा का लोक है। आत्मा पंच महाभूतों के लोक में रह करके पवित्रता का और अपने में उद्गीत गा करके अपने को उद्गाता बनाता है। विचार आत्म है मेरे पुत्रो, यजनम् ब्रह्मा: यजम ब्रहे, इस प्रकार राजा के यहाँ जब याग सम्पन्न हुआ तो भिन्न-भिन्न प्रकार के ऋषि मुनियों ने अपने उद्गार दिये और उद्गार दे करके उनकी दक्षिणा को स्वीकार किया। उन्होंने कहा प्रभु , हम चाहते हैं कि राष्ट्र में ऋषित्व रहना चाहिए यही हमारी दक्षिणा है।

शिक्षा प्रणाली

राजा के राष्ट्र में शिक्षा प्रणाली पवित्र हो और शिक्षा में इस प्रकार के यंत्र होने चाहिए जिससे देखो, जब विद्यालय में आचार्य शिक्षा देता हो, यंत्र विद्यमान हों और ब्रह्मचारी अंग संग विद्यमान हों। यदि आचार्य के हृदय में से अशुद्ध तरंगें उत्पन्न होती हैं, मिथ्या तरंगें होती हैं तो उनके चित्र यंत्रों में आने चाहिए और जो ऐसे यंत्रों के चित्र हो तो राजा का कर्त्तव्य है कि ऐसे आचार्यों को, ऐसे शिक्षक को विद्यालय से दूर कर देना चाहिए क्योंकि उसका मन दूषित हो गया है। इस प्रकार देखो, शिक्षा प्रणाली इस राष्ट्र का प्राण होता है। **राष्ट्र का यदि कोई प्राण है तो वह शिक्षा प्रणाली है।** यदि शिक्षा प्रणाली पवित्र है तो राष्ट्र पवित्र है, ब्रह्मचर्य पवित्र है, ब्रह्मचर्य की सुरक्षा हो सकेगी और ब्रह्मचर्य उर्ध्वा में है तो उस परमपिता परमात्मा को ब्रह्म और चरी के रूप में दृष्टिपात करके हम मानव अपने में प्रकाश को प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार उन आचार्यों ने कहा कि तुम्हारे **राष्ट्र में शिक्षा प्रणाली पवित्र होनी चाहिए।**

मेरे प्यारे देखो, मुझे स्मरण आता रहता है, महाराजा अश्वपति के राष्ट्र मे जब ब्रह्मचारी विद्यालय में अध्ययन कराते तो एक समय एक ब्रह्मचारिणी अपनी ब्रह्मचारिणियों को शिक्षा दे रही थी। शिक्षा देते-देते उनका मन गृह के आंगन में प्रवेश हो गया, शिक्षा देते-देते मन चला गया, मन मस्तिष्क चला गया वही चित्र में चित्रित होने लगा। ब्रह्मचारियों ने राजा से कहा प्रभु आपके विद्यालय में जो यह ब्रह्मचारिणी शिक्षा देती है, आचार्य यह अशुद्धम् ब्रह्मः इसके मन मस्तिष्क में स्थिरता नहीं है। तो उस प्रधान ने कहा कि हे देवी ! तुम्हारे मन मस्तिष्क में चंचलता आ गई है। उन्होंने स्वीकार कर लिया। स्वीकार करके उन्होंने उस आसन को कुछ समय त्यागा और मन मस्तिष्क के उपर उन्होंने तप किया। एकंत स्थाले में वेदों का अध्ययन करने से और उपवास करने के पश्चात् उनके मन की गति पवित्र बनी। इस प्रकार जब ब्रह्मचारियों को शिक्षा दी जायेगी तो उनका हृदय पटल पवित्र बनेगा। जब हृदय पटल पवित्र बनेगा तो शिक्षालय में महानता का प्रसार होगा। उस विद्या का प्रसार हो करके राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न होगी, उसी में आध्यात्मिकवाद निहित रहेगा और उसी में यह जगत अपनी आभा में रत्त होता रहेगा।

आज मै बेटा तुम्हें विशेष चर्चा नहीं देना चाहता हूँ। ऋषि मुनियों ने यह महाराजा रघु से प्रार्थना की और यही दक्षिणा में स्वीकार किया तो राजा रघु ने कहा कि प्रभु मै प्रार्थी हूँ और मैं तुम्हारे वाक्यों का पालन करूंगा परन्तु जिससे तुम्हारा और तुम्हारे गृह का पालन पोषण होगा उस द्रव्य को तो स्वीकार करो। तो राजा रघु ने जो दिया वह स्वीकार किया गया। मेरे प्यारे देखो याग सम्पन्न हो गया। याग जब सम्पन्न हो गया तो सर्वांग याग हो गया, मानो कोष में कोई द्रव्य नहीं रहा, उनके द्वार केवल पृथ्वी के पात्र रह गये। उन पात्रों में वह जलपान करते, उसी में वे तपस्वर रहते। पति-पत्नि दोनों अपने में तपस्या के जीवन को व्यतीत करने लगे।

मेरे प्यारे, उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय यह है कि जब तक राजा और उनकी देवी राष्ट्र में तपस्वी जीवन नहीं व्यतीत करेंगे या उनके जीवन की तरंगें उस क्रिया-कलाप में नहीं होगीं, देखो ज्ञान तो है परन्तु क्रिया-कलाप यदि नहीं है तो उससे भी मानव अंधकार में चला जाता है। यदि ज्ञान ही है और कर्म नहीं है तो दोनों का ज्ञान और कर्म भी पवित्र होना चाहिये जिससे राष्ट्र और समाज दोनों ऊँचे बनते हैं, विद्यालय ऊँचा बनता है, मैं यह कहता रहता हूँ। कल मेरे प्यारे महानन्द जी शिक्षा प्रणाली के उपर कुछ विचार दे सकेंगे आज तो मैं केवल इतना ही उच्चारण करना चाहता हूँ कि हमारे यहाँ शिक्षा प्रणाली बड़ी विचित्र मानी गई है। आज का विचार तो हमारा केवल यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और देव की महिमा का गुणगान गाते हुए परमात्मा के जगत को विचारे और जगत को विचार करके याग जैसे क्रिया कलापों को जब शुद्ध हृदय, शुद्ध भावनाओं से करते हैं तो हमारा वायुमंडल महानता में प्रवेश हो जाता है।

आज का वाक्य हमारा क्या कह रहा है कि हम परमिपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार सागर से पार होने का प्रयास करें। सबसे प्रथम ही पार होना है, चाहे कोई राजा हो वह भी मृत्यु से पार होना चाहता है, ब्रह्मचारी भी मृत्यु से पार होना चाहता है और विद्यालय में आचार्य भी मृत्यु से पार होना चाहता है, द्रव्यपति भी मृत्यु से पार होना चाहता है और द्रव्यहीन भी मृत्यु से पार होना चाहता है क्योंकि मृत्यु ही अंधकार है। अंधकार को न लाओ, प्रकाश का नाम जीवन है इसीलिये प्रकाश को लाने का प्रयास करो। मेरे प्यारे ! अंधकार को त्याग करके जब प्रकाश में रत्त हो जाओगे तो जीवन पवित्र बनेगा और राष्ट्र और समाज में एक महानता का वातावरण उत्पन्न हो जायेगा। तो आज का विचार विनिमय क्या कि परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए मेरे प्यारे, इस परमात्मा के जगत से हम पार हों। जितना भी यह जड़ जगत है, चेतन्य जगत है यह परमात्मा

का अनुपम जगत है, चाहे वह जड़ रूप में हो चाहे चेतन्य रूप में हो। मेरे प्यारे, आज का विचार हमारा अब सम्पन्न होने जा रहा है, आज के विचारों का अभिप्राय यह है कि हम बेटा ! एक दूसरे के विज्ञान में रत्त हैं, परमात्मा का जगत बड़ा अनंतमयी है क्योंकि परमात्मा द्रव्य का स्वामी है इसीलिये मानव द्रव्य के उपर अभिमान नहीं कर सकता। मानो देखो, रचना में, स्थूल जगत में एक यह ब्रह्मांड एक स्थूल उस ब्रह्म का है तो वह स्थूल का भी स्थूल है तो इसीलिये वह परमपिता परमात्मा स्थूल के उपर भी हम अभिमान नहीं कर सकते और बुद्धि के उपर यदि विद्या का अभिमान करते हैं तो वह परमात्मा उसका इतना अनंतमयी भंडार है कि एक-एक क्रिया-कलाप को उसने ऐसा रचा है जिसके उपर मानव के जीवन के जीवन समाप्त हो जाते हैं।

मेरे प्यारे देखो, आज का विचार विनिमय क्या कि हम परमपिता परमात्मा के क्षेत्र में आ करके अपने में पवित्रता को धारण करें और अपने मानवीय जीवन को पवित्र बनाने के क्रिया-कलापों में सदैव रत्त रहें। आज का विचार अब यह सम्पन्न होने जा रहा है, कल मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चायें, कल मेरे प्यारे महानन्द जी अपने दो शब्द उच्चारण करेंगे। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन-पाठन।

बरनाव
१३-३-९२

शिक्षा प्रणाली

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद वाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है क्योंकि वे परमपिता परमात्मा महिमावादी हैं और उसका जितना भी यह जड़ जगत अथवा चेतन्य जगत हमें दृष्टिपात आ रहा है उस सर्वत्र ब्रह्मांड के मूल में प्रायः वह मेरा देव दृष्टिपात आता रहता है। आज का हमारा वेद मंत्र 'छात्रम ब्रह्मणम ब्रहे क्षत्रस्य योनुग्रहाः'। हमारे यहाँ वेद वाक्यों में एक प्रसंग आया है कि यह छात्रम् ब्रह्माः, राष्ट्र की नाभी क्या है। राष्ट्र की नाभी के उपर ऋषि कहता है छत्रस्य ब्रव्हा क्रतम देवहाः कि यह जो छात्र है यही राष्ट्र की नाभी है, मानो यही अपने में पवित्रता को धारण कर सकता है तो यह राष्ट्र और समाज पवित्र आभा में परिणित हो जाता है। तो विचार आता रहता है कि छत्रस्यम् ब्रह्मा वर्णस्सुतेः, मानो देखो, इस संसार की जो नाभी है, मानव समाज की जो नाभी है जैसे प्राण इस जगत, संसार, ब्रह्मांड की नाभी माना गया है इसी प्रकार ये जो छात्र है ये राष्ट्र और समाज की नाभीं कहलाता है क्योंकि यह मध्य है यही तो जीवन का स्रोत्र माना जाता है।

आंज का हमारा वाक् यह कहता है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए अपने में उस देव का गुणगान गाते रहें इसीलिये राजा, महाराजा और मानव सदैव छात्रों के लिये उनकी आज्ञा का पालन करता रहा है। मुझे वह वाक्

स्मरण आता रहता है, मानो देखो राजाओं के यहाँ जाकर ब्रह्मचारी कहता है प्रभु ! मुझे आचार्य को दक्षिणा प्रदान करनी है मुझे द्रव्य दीजिये तो राजा उस समय द्रव्य देता है और ब्रह्मचारी अपने गुरुओं के लिये, वृक्ष वृक्षाम् ब्रव्हे, वे भिक्षा-प्रवृत्ति से उसको प्रदान करते हैं। अमृतम ब्रह्मा: व्रणस्सुतम, तो इसी प्रकार मुनिवरो, राष्ट्र को ऊँचा बनाने के लिये प्रत्येक मानव और प्रत्येक राजा के राष्ट्र में छात्र वर्ग पवित्र होना चाहिये। छात्रम् व्रणम नाभी:, क्योंकि जैसे इस पृथ्वी की नाभी यह यज्ञशाला कहलाती है क्योंकि यही तो कर्म है और यह उर्ध्वा में कर्म माना गया है तो इसीलिये यह नाभी है। इस नाभी के उपर हमें विचार विनिमय करना, नाभ्याम भूतम, मानो देखो आचार्यों ने सर्वांगता में अपने सर्वत्र जीवन के लिये याग का अवधान किया है। आज मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं प्रगट करूँगा, आज का वाक् केवल यह कि आज हम अपने राष्ट्र, अपने समाज और मानवीयता को पवित्र बनाने के लिये तत्पर रहें और अमृतम ब्रह्मा: देखो, अपने में महानता की ज्योति को अपनाने का प्रयास करें। आज का हमारा वाक् यह कह रहा है कि परमात्मा का जगत अनन्तमयी है और लोक-लोकान्तरों में समय-समय पर नाना प्रकार का आव्हान होता रहता है। एक दूसरे में संघर्ष भी होता रहता है और एक दूसरे में उसकी कृतियां भी नष्ट होती रहती हैं और वे पृथ्वी मंडल पर अभ्यासो व्रही, अवृत होता रहता है। जैसे पृथ्वी मंडल पर जितने श्रेष्ठ क्रियाकलाप होते हैं, महानता के क्रिया कलाप होते हैं तो वायुमंडल में इनकी कृतियां जाती हैं और वही कृतियां मानो देखो, अभ्योदय करने के लिये उस प्रदूषण को अपने में निगलती चली जाती हैं। आज इस सम्बन्ध में बेटा, तुम्हें कोई विशेष चर्चा नहीं अब मेरे प्यारे महानन्द जी अपने दो शब्द उच्चारण करेंगे।

महानन्द जी का प्रवचन

"ओ३म् देवाम भूतम भविब्रह्मणा: देवाम् भविते नमम् ब्रह्मण व्रव्याहम देवा: ।" मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अथवा मेरे भद्र ऋषि मंडल अभी-अभी मेरे पूज्यपाद

राष्ट्र की चर्चायें कर रहे थे। मानो आज ही नहीं कर रहे है वे नित्यप्रति राष्ट्र का आव्हान करते रहते हैं। राष्ट्र को ऊँचा बनाओ, ऊँचा बनाओ ऐसी वार्त्ता वे प्रगट करते रहते हैं। हमारे यहाँ राष्ट्रों में जो नाना प्रकार के दोषों का आरोपण आ गया है उसके उपर विचार विनिमय करना है। हम सब यहाँ इसलिये उपस्थित हैं कि हम त्रुटियों के उपर विचार विनिमय करें जिससे मानव रसातल को जाता है, उसके मूल में क्या है। जैसे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने इससे पूर्व काल में राष्ट्रीय प्रणाली के उपर अपना विचार दिया कि राष्ट्रीय प्रणाली कैसी पवित्र होनी चाहिये। इसके पश्चात् आध्यात्मिकवाद की भी चर्चायें मेरे पूज्यपाद गुरुदेव नित्यप्रति करते रहते हैं कि राजा को आध्यात्मिकवादी होना चाहिये और जितना भी समाज है वह सब आध्यात्मिकवाद में, ब्रह्म के याग में वर्णित होता रहे। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह कहा कि राष्ट्रम ब्रहे, राजा का राष्ट्र जब भी पवित्र बनता है आत्मवेताओं से ऊँचा बना करता है, जब शंख ध्वनि होती है, वेद ध्वनि होती है। तो मेरे पूज्यपाद कई समय से राष्ट्र की चर्चायें कर रहे हैं और उसमें आध्यात्मिकवाद का समन्वय करते रहे हैं। आज मैं कोई समन्वय तो नहीं करूँगा परन्तु विचार विनिमय यह कि आधुनिक जगत जो इस प्रकार यह वर्तमान का काल चल रहा है इस काल में जो भी त्रुटियां मुझे दृष्टिपात आती हैं मैं उसका वर्णन अवश्य कर पाऊँगा।

विज्ञान का दुरुपयोग

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो मुझे नाना प्रकार की वार्तायें प्रगट कराते रहते हैं। दुरिता के उपर मेरे हृदय से कटुता का वाक् तो अवश्य उच्चारण होता रहता है क्योंकि सत्यम ब्रह्माः कटोवृत्ति देवत्वाम। हमारे आचार्यों ने कहीं-कहीं ऐसा माना है कि यह जो कटु शब्द होता है यह भी मानव में कई वृत्तियों को जन्म देता है परन्तु मैं सत्य के उपर उच्चारण कर रहा हूँ कि मानव समाज को कैसे ऊँचा बनाया जाता है। मुझे स्मरण आता रहता है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन कराया कि महर्षि भारद्वाज के यहाँ महर्षि सोमकेतु मुनि महाराज,

प्रव्हाण और शिलक जी का आगमन हुआ। गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज की अध्यक्षता वाला वह ऋषि मुनियों का समाज जब भारद्वाज मुनि के यहाँ पहुँचा तो भारद्वाज मुनि से यह प्रश्न किया गया कि आप का विज्ञान कितना महान है। तो उन्होंने विज्ञान के नाना यंत्रों का दृष्टिपात कराया। उन यंत्रों में बड़ा-बड़ा अविष्कार था मानो यंत्रों में, चरित्र आव्रणंत, नाना प्रकार के चरित्र और चित्र भी आते रहते, चित्र के साथ में चरित्र का भान होता रहता। मेरे पूज्यपाद ने यह हमें वर्णन कराया हम तो उनकी कृतियों को पुनरुक्ति दे रहे हैं। महर्षि भारद्वाज से ऋषि मुनियों ने कहा कि प्रभु यह राष्ट्र और समाज कैसे ऊँचा बनता है क्योंकि तुम्हारा विज्ञान तो बड़ा महान है। मानो देखो, विज्ञान यह है क्या और विज्ञान का अंतिम चरण क्या होता है ? क्योंकि जहाँ सूर्य मंडल की उर्ज्वा से परमाणुओं को ले करके यंत्रों का निर्माण किया जाता है, चन्द्रमा से दि..णों को ले करके यंत्रों का निर्माण कांतियुक्त हो करके किया जाता है इसी प्रकार पार्थिव्य तत्वों को परमाणु रूप में ला करके निर्माण किया जाता है और मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा था कि यही यंत्र निर्माण हमारे राष्ट्र के लिये वृत्ति कहलाते हैं।

महर्षि भारद्वाज मुनि से जब गाड़ीवान रेवक मुनि ने यह प्रश्न किया कि महाराज इस याग का, मानो देखो आपने जो इस विज्ञान को जाना है इसका अंतिम चरण क्या होता है। तो उन्होंने कहा था कि जिस समय, **जिस भी काल में विज्ञान का दुरुपयोग होता है, वह विज्ञान समाज को मृत्यु को पहुँचा देता है** और जब विज्ञान का दुरुपयोग नहीं होता, विज्ञान का सतुपयोग होता है तो वही विज्ञान देखो, राष्ट्र को उर्ध्वा में गमन कराता रहता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने जब यह वर्णन कराया, उनके वाक्यों को हम श्रवण करते रहे तो उन्होंने यह कहा कि ब्रह्मणेः विज्ञान का सतुपयोग होना चाहिए। जितना विज्ञान को जानकर उसका दुरुपयोग होता है उतना विज्ञान राष्ट्र और समाज के लिए घातक कहलाता है। मानो देखो, इस समाज में जब इस भौतिकवाद का

मनोरंजन की वार्ता आती है कि उसे कहते हैं मनो-मय-रंजन, मानो यह विज्ञान और यह ज्ञान मनो का रंजन नहीं होता यह तो आत्मा का स्वतः स्वाभाविक रुप कहलाता है। इसके उपर मानव को अपने में अनुसंधान करना है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह वर्णन कराया कि भारद्वाज मुनि के यहाँ नाना प्रकार के यंत्र विद्यमान हैं और उन यंत्रों का सतुपयोग होना ऋषि ने वर्णन किया है। यह कहा है कि नाना प्रकार की चित्रावलियां हैं और उन चित्रावलियों में ऋषि मुनियों के चरित्र आते हैं, ऋषि मुनियों के महानता के क्रियाकलाप होते हैं तो वही विज्ञान समाज को उर्ध्वा में ले जाता है और जिस विज्ञान के माध्यम से मेरी पुत्रियों के नृत्य होते हुए मानो देखो, अश्लीलता में चित्रों का दर्शन किया जाता है तो वही राष्ट्र के लिये घातक बन जाता है। इसीलिए सबसे प्रथम यह वाक्य कि **विज्ञान का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए।**

राजा का चरित्र

अब प्रश्न यह आता है कि विज्ञान का दुरुपयोग क्यों होता है ? गाड़ीवान रेवक मुनि ने यह कहा कि महाराज यह विज्ञान राजा अपने राष्ट्र में दुरुपयोग क्यों करता है ? तो उस समय ऋषि कहता है, भारद्वाज मुनि ने कहा कि इसलिये करता है क्योंकि जब राजा का अपना आहार और व्यवहार पवित्र होता है तो प्रजा में भी आहार व्यवहार पवित्र होता है तो विज्ञान भी स्वच्छ बन करके आता है और ज्ञान भी स्वच्छ बन करके आता है। जब ज्ञान और विज्ञान स्वच्छ होता है तो राजा कि प्रतिभा उर्ध्वा में और राष्ट्र प्रतिभाशाली बन जाता है। राष्ट्र की अवनति का मूल कारण यह कि उसमें विज्ञान का दुरुपयोग है और विज्ञान जब दुरुपयोग होता है तो राजा के राष्ट्र में, राजा में स्वतः जब चरित्र नहीं रहता है। जब राजा में चरित्र होता है, चरित्र की विवेचना करते हुए आचार्यों ने वर्णन किया कि देखो, राजा प्रातःकालीन सूर्य उदय से पूर्व अपनी शारीरिक क्रियाओं से निवृत्त हो करके जब वह परमात्मा का चिंतन करता है और अपने विचारों से सुगंधि देता है, अपनी व्यायामशाला में अपने शरीर को सजातीय

बनाता है अथवा उसे पौष्टिक बनाता है तो राजा का क्रियाकलाप स्वतः ही प्रजा में प्रसारण हो जाता है और प्रजा उसी के अनुसार बरतने लगती है। जब प्रजा उसके अनुसार बरतती रहती है तो राजा के राष्ट्र में सुरा और सुन्दरी तथा द्रव्य की लोलुपता नहीं होती क्योंकि जब राजा में द्रव्य और सुरा, सुन्दरी की लोलुपता नहीं होगी तो प्रजा में भी नहीं होगी और प्रजा उर्ध्वा में गमन करती रहेगी।

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कई काल में कहा है कि इस मानव क्रियाकलाप को बहुत समय हो गया है। आज यह कोई नवीन बात नहीं है परन्तु महाभारत के काल में, उससे पूर्व भी कुछ काल में यह कौतुक आया और यह विचार आया कि राजा स्वार्थी बन मोह ममता में आ जाता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने इससे पूर्वकाल में एक वाक् बहुत उर्ध्वा में, उद्गीत रुप में गाया। उन्होंने कहा कि **राजा जब मोह में आ जाता है तो वह न्याय नहीं कर सकता।** मानो देखो, इसी प्रकार जब महाभारत का काल आया तो उस काल के विनाश का कारण क्या था ? उसमें सुरा और सुन्दरी थी और द्रव्य था, विज्ञान का दुरुपयोग हो गया था। जब उसमें अभिमान आ गया, मेरी पुत्रियों का हनन किया गया मानो देखो, हनन करने से उस अभिमान का परिणाम यह हुआ कि हस्तिनापुर में अग्नि प्रदीप्त हो गई। मुझे प्रतीत है कि यहाँ ऋषि-मुनियों ने भी यह कहा कि अमृतम, सबसे प्रथम देखो, भीष्म जी को अपने क्रियाकलापों पर, अपने अस्त्रों-शस्त्रों पर अभिमान आया। उस अभिमान का परिणाम यह हुआ कि उन्होंने मेरी पुत्रियों का तिरिस्कार किया। जब पुत्रियों का तिरिस्कार होना प्रारम्भ हुआ तो उस तिरिस्कार का परिणाम यह हुआ कि हस्तिनापुर में अग्नि प्रदीप्त हो गई। सब मानव उससे खिन्न हो गये, राजा-महाराजा सब उससे खिन्न हो गये और अपने गृह में अग्नि प्रदीप्त हो करके महाभारत का संग्राम हुआ। आज मैं इसके उपर कोई विचार नहीं दूँगा, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई समय वर्णन कराया है। उन्होंने वर्णन करते हुए कहा है कि

अभिमान ही राष्ट्र की मृत्यु है, पुत्रियों का हनन होना ही राष्ट्र की मृत्यु है और चरित्र न होना ही राजा के राष्ट्र की मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार चरित्र के लिए बहुत सी आभायें हैं।

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से पूर्वकाल में बहुत से प्रश्न किये। जब राजा सुरा पान करने लगता है, जब राजा द्रव्य की लोलुपता में आ जाता है, न करने वाले क्रियाकलाप को करने लगता है तो राजा के राष्ट्र में चरित्र न रहने से मानो देखो, भयंकर अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। उस अग्नि का परिणाम यह होता है कि राजा के राष्ट्र में, मानो नाना प्रकार की रुढ़ियां उत्पन्न हो जाती हैं और उन रुढ़ियों के उत्पन्न होने से ही देखो, एक दूसरा प्राणी, प्राणी को नष्ट करने के लिये तत्पर हो जाता है। जब ज्ञान नहीं रहेगा तो विवेक नहीं रहेगा और जब विवेक नहीं रहेगा तो ज्ञानम ब्रह्मा: देखो, चरित्र भी नहीं रहेगा और चरित्र नहीं रहेगा तो अज्ञान छा जायेगा और अज्ञान के आने पर मानो देखो, विद्यायें लुप्त हो जाती हैं। जब विद्या लुप्त हो जाती हैं तो मानव को तो आत्मिक तरंगें चाहिये वह आत्मिक तरंगों में तरंगित होता हुआ नाना प्रकार के रुढ़िवाद बन जाते हैं। उन रुढ़ियों का परिणाम यह होता है कि वे रुढ़ियां एक दूसरे को नष्ट करने लगती हैं, प्राणों को नष्ट करने और रक्त बहाने लगती हैं तो इसलिये राजा के राष्ट्र में एक अग्नि प्रचंड हो जाती है। विचार आता रहता है कि इसलिए चरित्र की राजा को आवश्यकता रहती है। राजा के राष्ट्र में चरित्र ही एक बहुमूल्य वस्तु कहलाती है जिसके उपर उसे विचार विनिमय करना है।

गुरु और शिष्य

आज मैं राष्ट्र की चर्चा इसलिये उच्चारण कर रहा हूँ कि राष्ट्र होगा तो समाज पवित्र बनेगा, **आध्यात्मिकवाद भी राष्ट्र से बिन्धा हुआ होना चाहिए** परन्तु आज मैं वर्तमान के काल की वार्ता प्रगट करा रहा हूँ। कहाँ वह

आध्यात्मिकवाद का काल था जब हम अपने पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा अध्ययन के लिये जाते। मस्तिष्कों का जब अध्ययन किया जाता तो पूज्यपाद कहते कि इतने समय तक गायत्री का जाप करो, मानो वेदों का अध्ययन करो और रात्रि इतने समय तुम्हें विश्राम करना है, इतने समय मंत्रों का अध्ययन करना है। जब आचार्य इस प्रकार उद्गीत गाते तो वैसा ही किया जाता तो विद्यालय सजातीय बन जाते। आधुनिक काल में जो छात्र वर्ग की प्रवृत्ति है वह अशुद्ध बन रही है। पूर्वकाल में ब्रह्मचारियों को आहार देने के लिये आचार्य कहते कि जाओ तुम प्रातःकालीन वायु का सेवन करो। देखो, आधुनिक काल में ब्रह्मचारी को यदि आचार्य यह कहता कि वायु का सेवन करो तो वे ब्रह्मचारी अपने में जाने के लिए तत्पर नहीं हैं। उसका मूल कारण क्या है ? उसके मूल में राजा है और आचार्य हैं, उसके मूल में माता है, पितरजन हैं। ये सर्वत्र अपने में उन क्रियाकलापों को नहीं कर पाते, जब नहीं कर पाते तो ब्रह्मचारी भी नहीं कर पाता। इसलिये आगे चल करके ब्रह्मचारी देखो, केवल द्रव्य की लोलुपता के लिये अध्ययन करता है, वह मानवता के लिये अध्ययन नहीं कर रहा है। यदि आज का छात्र वर्ग, आज का राष्ट्र यह विचारने लगे कि मेरे जीवन में मानवता होनी चाहिए और विद्यालयों में मानवता के लिये ही मैं शिक्षा अध्ययन करा रहा हूँ, मुझे द्रव्य की लोलुपता नहीं है, मैं मानवता चाहता हूँ, मनन करने वाली विद्या को चाहता हूँ तो राष्ट्र सदैव ऊँचा बनेगा, छात्र वहाँ का ऊँचा रहेगा। परन्तु जब आचार्य को द्रव्य चाहिए तो ब्रह्मचारी को भी द्रव्य चाहिये और जब ब्रह्मचारी को ऐश्वर्य के लिये द्रव्य चाहिये तो गृह आश्रम में प्रवेश करते ही उसके क्रियाकलाप सब नष्ट हो जाते हैं। परन्तु वही अज्ञानता के लिये जब आत्मा को भोग नहीं प्राप्त होता तो वह रुढ़ियों में परिवर्तित हो जाता है और समाज रुढ़िमय बन जाता है, क्योंकि अज्ञानता से रुढ़ि आती है।

जब भी शिक्षा प्रणाली का प्रसंग हमारे समीप आता है, हम शिक्षा प्रणाली के उपर विचार विनिमय करते हैं तो राजा के राष्ट्र में शिक्षा प्रणाली का जो

वितरण है, वितरण प्रणाली राष्ट्र में पवित्र न रह करके अपवित्र बन गई है इसलिये वह शिक्षा अध्ययन करके भी रुढ़ियों को उत्पन्न करता है, वह रुढ़ियों में जाता है। जिस विद्या को जान करके ब्रह्मचारी निगल करके इस विद्या का अपने मुखारबिन्दु से आचार्य बन करके वमन करता है और ब्रह्मचारी उससे पवित्र होता है, आधुनिक काल में वही आचार्य जब द्वितीय रुढ़ि में चला जाता है तो वह अपने शिष्य और शिष्याओं को उस शिक्षा के वमन को न दे करके अपने अन्न के आहार का वमन करा कर उसका पान कराना चाहता है। अपनी झूठन जब शिष्यों को देता है तो शिष्य बड़े प्रसन्न हो कहते है कि गुरु की अनुपम कृपा हो गई है तो मानो इसका नाम रुढ़िवाद कहा जाता है। रुढ़िवाद का अभिप्राय यह है कि उसे वह झूठन नहीं देनी चाहिए और न ब्रह्मचारी को उसे पान करना चाहिए। उसके मूल में यह कि ज्ञान नहीं रहा है, आचार्यों ने ज्ञान नहीं दिया। आचार्यों ने ज्ञान न दे करके केवल द्रव्य के लिए अध्ययन किया है। अध्ययन करने के पश्चात् उस प्रकार की प्रवृत्ति बन जाती है। यह प्रवृत्ति राष्ट्र के लिये, समाज के लिये और आध्यात्मवाद के लिये बड़ी घातक कहलाती है। परन्तु जब मैं विद्यालय में पहुँचा तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने यह प्रश्न किया था कि आचार्य की झूठन क्या होती है, गुरुओं की झूठन क्या होती है तो मैंने उत्तर दिया कि हे प्रभु झूठन के उत्तर को तो मैं जानता नहीं पर इतना जानता हूँ कि जिस विद्या का अध्ययन आचार्य ने किया है और तपस्या से उसका मंथन किया है, वही विद्या ब्रह्मचारी को आचार्य वमन के रूप में परिवर्तित करता रहता है। तो वह विद्या हमें मिलनी चाहिए। उस विद्या से मानव का जीवन पवित्र बनता है।

राष्ट्र में निर्वाचन

मैं यह कहता रहता हूँ कि राष्ट्र की जो प्रणाली है वह बड़ी अशुद्ध है क्योंकि राष्ट्र की प्रणाली केवल चरित्र के उपर होनी चाहिए। जब राष्ट्र का निर्वाचन हो तो बुद्धिजीवी प्राणी विद्यमान हों। आधुनिक काल में बुद्धिजीवी

उन्हें स्वीकार करते हैं जो सबसे विशेष मिथ्या उच्चारण करते हैं, वह बुद्धिमान कहलाता है। परन्तु देखो, जब वह कहता है कि हम सब धर्मों को एक ही स्वीकार करते हैं तो मैं यह कहता कि अरे भोले, हे राष्ट्र के नेता, राष्ट्र के कर्मवेता, देखो, **धर्म तो एक हीं होता है धर्म अनेक नहीं होते हैं।** जब राजा को यह ज्ञान नहीं होता, राष्ट्र के कर्मचारियों को यह ज्ञान नहीं होता कि धर्म एक है या अनेक हैं मानो देखो, वहीं राष्ट्र की प्रणाली समाप्त हो जाती है। वहीं धर्म और मानवीयता की प्रणाली समाप्त हो जाती है। इसीलिये राजा को जानना चाहिए कि धर्म एक है और धर्म को ही स्वीकार करना चाहिए। क्योंकि मानव के नेत्रों का धर्म है दृष्टिपात करना, सुदृष्टिपान करना ही मानव का धर्म है। कुदृष्टिपान करने से मानव की अधर्म प्रवृत्ति बन जाती है। इस विषय में मैं अपने विचार विशेष नहीं दूँगा। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ! मुझे राष्ट्र के प्रति एक दाह बनी हुई है, उसका मूल कारण यह है कि जब राजा का निर्वाचन होता है और निर्वाचन में जब एक बुद्धिमान, जिसने जीवन भर वेद का अध्ययन किया है और तपस्या की है और वायु का सेवन करके अपने जीवन को व्यतीत किया है, वह विवेकी बन गया है, निष्पक्ष बन गया है, जब उसके विचार, उसकी एक ही भावना रहती है कि देखो जो अपठित है जो नहीं जानता है, जब दोनों का एक ही सूत्र मनका बन जाता है तो उस राजा की राष्ट्रीय प्रणाली, निर्वाचन प्रणाली भ्रष्ट हो जाती है और वह भ्रष्ट इसलिये होती है कि बुद्धिमानों से राष्ट्र का निर्वाचन होना चाहिए।

बुद्धिमानों की सभायें होनी चाहिए और उसमें सभापति, जो वेद के ज्ञान का मर्मज्ञ हो, जो तपस्या का मर्मज्ञ हो, जो ऋषि हो, मानो देखो, जो निस्वार्थ हो, जो विवेकी पुरुष हो, उसका निर्वाचन होना चाहिए। वह राजा बने और राजा बन करके अपने राष्ट्र का कल्याण करे और प्रजा में अश्वमेघ यागों का आयोजन होना चाहिए। इस प्रकार राजा निर्द्वन्द होना चाहिए। जब राजा के राष्ट्र में प्रत्येक मानव निर्द्वन्द बन जायेगा

तो राष्ट्र अपने आप ही शुद्ध और पवित्रता की वेला में परिणित हो जायेगा। देखो, इसीलिये राज्य में भ्रष्टता है क्योंकि राजा चरित्रवान न होने से, इन्द्रियों के उपर सयंम न होने से, मानो देखो इसीलिए राष्ट्र अपने में अपवित्र बनता चला जा रहा है। मैं दृष्टिपात करता रहता हूँ कि आधुनिक काल में जो प्रणाली बनी है, जन समूह की प्रणाली, वह है तो विचित्र वो बुद्धिमानों की प्रणाली है परन्तु देखो, जब निर्वाचन होता है तो बुद्धिमान भी, मानो देखो विकृत हो जाता है और वह उसी द्रव्य की लोलुपता में, उसी सुरा-सुन्दरी की लोलुपता में रत्त हो करके देखो, राष्ट्र का विनाश कर रहा है। इसीलिए आधुनिक काल राष्ट्र का विनाश कर रहा है। इसीलिए आधुनिक काल राष्ट्र के विनाश के मार्ग पर जा रहा है। उसके मूल में ज्ञान न होने से यह त्रेता के काल से क्रियाकलाप चला आ रहा है। त्रेता के काल के पश्चात् यहाँ जितने राजा आये उसमें अज्ञान आया। उसके पश्चात् यहाँ और भी अज्ञान आया जब एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण होना प्रारम्भ हुआ। जब आक्रमण हुआ तो उसको अपनाने का प्रयास किया। यवनों ने राष्ट्रों में जा करके अवृत किया, उनकी संस्कृति उनके चरित्र को भ्रष्ट करने का प्रयास किया। किसलिये चरित्र भ्रष्ट कर रहा है मानव ? क्योंकि अपनी लोलुपता के लिये करता है। यदि उसका अपना कोई ज्ञान हो, विवेक हो तो वह प्रजा के चरित्र को भ्रष्ट नहीं करेगा। राजा चरित्र इसलिये भ्रष्ट करता है क्योंकि अपनी लोलुपता और अपना राष्ट्र बना रहे। इसीलिये वह चरित्र को नष्ट करता रहता हैं। आज मैं इन राजाओं की वार्तायें नहीं प्रगट कर रहा हूँ। जितने राष्ट्र हुए है वे सुन्दरियों में रमण करते रहे हैं और सुन्दरियों में रमण करने से अज्ञान आया। अज्ञान के आने से यहाँ नाना प्रकार की रुढ़ियों की उपलब्धि हुई।

पातालपुरी

अमृतम मंगलम ब्रहे देखो, अवृतम अब मैं वैसे वाक्यों की चर्चा कर रहा हूँ जो मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से वर्णन कराया। देखो, जब बभ्रुभान

(बभ्रुवाहन) पातालपुरी का राजा बना तो पातालपुरी में एक मानवता का प्रसार हुआ। हमारे यहाँ भगवान कृष्ण की पताका अपने में बड़ी विशालता से थी, पांडवों की पताका भी बड़ी विशालता से थे परन्तु वहाँ जब एक क्रांति आई थी, बभ्रुभान से पूर्व काल में एक क्रांति आई जहाँ देखो, अमृतम ब्रह्मा:, वह अस्सुति तत्वम ब्रही व्रणाहा:, **महर्षि कपिल मुनि महाराज पातालपुरी के रहने वाले, वही उनका विद्यालय था। जब वहाँ से क्रांति प्रारम्भ हुई, उस क्रांति से नाग जाति यहाँ इस भारत भूमि पर आई और नाग जाति को भगवान कृष्ण ने अपने में अपनाने का प्रयास किया।** समाज में जब अज्ञान आया तो कैसा आया पूज्यपाद ! कि नाग जो रेंगने वाला प्राणी है उसको समाज में नाग स्वीकार करके और उसको नाचने के लिये उन्होंने कृष्ण को कलंकित किया। महापुरुषों को समाज में कलंकित किया है। महापुरुषों को रुढ़िवाद में ही कलंकित किया जाता है। देखो, नाग जाति यहाँ जातियता के आधार पर मिश्रित हो गई और मिश्रण हो करके आज भी आधुनिक जगत में भी कहीं-कहीं नाग जातियां प्राप्त होती रहती हैं। इसीलिये देखो, मैं यह उच्चारण कर रहा हूँ, बहुत से राष्ट्रों से इस प्रकार का अवधान हुआ। परन्तु देखो, वही पातालपुरी जब रुढ़िवाद के आंगन में प्रवेश हुई तो वहीं ईसा के मानने वाले हुए। ईसा के मानने वालों में नाना प्रकार का रुढ़िवाद आया और प्राणी, प्राणी को नष्ट करने लगा, रक्त से रक्तों की कृतियां उपलब्ध हो गई क्योंकि मानव रुढ़ियों में एक दूसरे की रुढ़ियों को नष्ट करने लगा। देखो, संसार का विनाश क्यों होता है ? जब होता है जब अज्ञान आ जाता है, ज्ञान नहीं रहता है। ज्ञान में ही सर्वत्रता में विद्यमान रहने वाला मानव अपनी आभा में परिणित होता रहता है।

विचार आता रहता है, मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से वर्णन करता रहता हूँ कि उसके पश्चात् और भी नाना प्रकार की रुढ़ियां बनी परन्तु वे रुढ़ि वृत्तियों में, महाभारत के काल के पश्चात् नाना प्रकार की रुढ़ियों का प्रादुर्भाव हुआ। देखो, यहाँ मौहम्मद के मानने वालो में एक स्वतंतता है कुरु, मानों कुरु

का जन्म कहाँ से होता है ? यह कुरु वंशियों से होता है क्योंकि यहाँ महाभारत में कुरुवंशी और पांडव दो पक्ष बने थे। तो जितने भी कुरु हैं ये सर्वत्र दुर्योधन के मानने वाले थे, ये कुरु को ही मानने वाले थे तो कुरुवंश कहलाये गये और इसी प्रकार देखो पाश्चात् अमृती (अमेरिका) जिसको कहते हैं, पातालपुरी यह सब पांडवों के अंब्रत्तियों में रत्त रहने वाले परन्तु देखो यह भी संग्राम के व्रत्ती बने। विचार आता रहता है मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं परन्तु यह रुढ़िवाद बन गया। यही रुढ़िवाद बन करके कोई मौहम्मद के मानने वाला, कोई ईसा के मानने वाला बना। ये रुढ़ियां क्यों बनती हैं। ये अज्ञानता से बनती हैं। इसीलिए अज्ञान को नष्ट करने के लिये राजा का जन्म होता है, यह राजा का कर्त्तव्य है, राजा की उपलब्धियां होती हैं। वे मातायें चली गई संसार से जिन माताओं के गर्भ से यहाँ कृष्ण जैसों का जन्म होना शान्त हो गया। यहाँ राम जैसे महापुरुषों का जन्म समाप्त हो गया। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कई समय श्रवण किया कि लंका में राजा का जब राष्ट्र तप रहा था, राजा रावण के राष्ट्र में सूर्य अस्त नहीं होता था, वह इतना विशाल राष्ट्र बन गया था परन्तु उसी राजा के राष्ट्र में रुढ़ियां अज्ञान आ गया। अज्ञान आने से, ज्ञान न रहने से राजा में स्वार्थवाद आया, वे सुरा और सुन्दरियों मे लग गये और नाना प्रकार की रुढ़ियां बन गई। देखो, यह राक्षस जो उपाधि है, यह एक रुढ़ि कहलाती थी। राजा रावण का पुत्र मेघनाथ इत्यादि ये सब देवी सम्पदा को स्वीकार करते थे, जो देवी की पूजा करते थे उनका परिणाम यह हुआ कि रुढ़ियों में राष्ट्र चला गया, अंत में राम ने ज्ञान के द्वारा रुढ़ियों को नष्ट करने का प्रयास किया और प्रयास करके उन्होंने राम राज्य की स्थापना की।

विचार आता रहता है, मैं यह चर्चा देने आया हूँ कि प्रत्येक राष्ट्र में ज्ञान की आवश्यकता है, राजा को ज्ञान और विवेक की आवश्यकता है। **जब तक यह विवेक नहीं होगा कि हम अपने में अपनेपन को न विचार सकें तब तक राष्ट्र ऊँचा नहीं बनता।** मैंने राष्ट्रीयता के हृदय को जाना,

जानने के पश्चात् मेरे हृदय में एक विडम्बना होती रहती है कि राष्ट्र कहाँ जा रहा है, कहाँ क्षात्र बल जा रहा है, कहाँ आचार्यजन जा रहे हैं। जहाँ आचार्य और छात्र, दोनों देखो, सुरा का पान करने वाले, एक स्थान में हों तो विद्यालय कैसे ऊर्ध्वा में पहुँचेगा। मानो जहाँ माता और पिता, जहाँ पिता और पुत्र दोनों सुरापान में लग रहे हों तो गृह कैसे पवित्र बनेंगे ? आज कोई गृह को पवित्र बनाना चाहता है तो अमृतम ब्रह्मा:, उन माता कौशल्या को जन्म लेना होगा जिन माता कौशल्याओं के गर्भ से राम जैसों का जन्म हो। जब तक माता के गर्भ से राम जैसे पुत्रों का, भरत जैसे पुत्रों का जन्म नहीं होगा जो राष्ट्र को खिलवाड़ की भांति स्वीकार करते हैं कि अरे ! मैं भी राष्ट्र को नहीं चाहता, मैं भी राष्ट्र को नहीं चाहता, जब तक ऐसे त्यागी तपस्वियों का जन्म नहीं होगा तब तक राष्ट्र में महानता का जन्म नहीं होगा। मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा है कि बहुत समय हो गया है इस समाज को रेंगते हुए जैसे सर्प रेंगता रहता है ऐसे ही समाज रेंग रहा है। यह अपने चरित्र को और अपने को ऊँचा बनाने में असमर्थ हो रहा है। मैं यह चाहता रहता हूँ कि इसको पवित्र बनना है।

देखो, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी-अभी वर्णन किया है और मैं भी इन वाक्यों को पुनरुक्ति करता हूँ कि राष्ट्र को ऊँचा बनना है तो विज्ञान पवित्र होना चाहिए। जब विज्ञान में मेरी पुत्रियों का नृत्य होता है, मेरी पुत्रियों के नृत्य को दृष्टिपात करके मेरे राष्ट्र में रहने वाले पुत्र और पुत्रियां उस नृत्य से प्रसन्न होते हैं और समाज में निकृष्टता आ रही है, ब्रह्मचर्य नहीं रहा है। क्योंकि ब्रह्मचर्य से मानव में बुद्धि आती है, विज्ञान के दुरुपयोग ने ब्रह्मचर्य को अपने में ग्रहण कर लिया है, ग्रहण करने से वह नष्ट कर रहा है। पुत्र, पुत्रियां नष्टता को जा रही हैं परन्तु क्या राजा को यह ज्ञान नहीं है ? शिक्षा शास्त्री यह कहते हैं कि पुत्र और पुत्रियां दोनों एक ही विद्यालयों में अध्ययन करें। यह राजा के लिए एक सबसे महा दोषारोपण

है क्योंकि विद्यालय दूरी होने चाहिए। कन्याओं का पवित्र विद्यालय हो तो ब्रह्मचारियों का भिन्न हो, दोनों अपने-अपने जीवन को ऊँचा बनाने वाले हों। इस प्रकार की प्रणाली भगवान मनु ने निर्धारित की थी। मनु जी के वाक्यों को न विचार करके देखो यह समाज, यह राष्ट्र रसातल को जा रहा है। मैं यह कहता रहता हूँ कि राजाओं की सभायें होनी चाहिए। राजा जब रुढ़िवाद के आंगन में प्रवेश हो जाता है तो राजा को जब मृत्यु का भय बना रहता है। अरे देखो, जब यहाँ के बुद्धिमान भी, जो अपने को गुरुजन कहते हैं, जब उनके पीछे भी मृत्यु का भय लगा रहता है तो वह आचार्य और गुरु भी नहीं रहे।

राजा का व्यवहार

विचार आता रहता है, मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं दूँगा परन्तु निर्भयम भूतम् ब्रह्मेः, वेद का मंत्र कहता है कि मानव को निर्भय रहना चाहिए, राजा को निर्भय रहना चाहिए। राजा निर्भय उस काल में होता है जब उसे ज्ञान होता है, विवेक होता है, परमात्मा का भक्त होता है क्योंकि **परमात्मा का जो भक्त है वही तो निर्भय रहता है।** इसीलिए राजा में परमात्मा की प्रतिती न होने से उसे मृत्यु का भय बना रहता है, मेरी यहाँ भी मृत्यु न हो जाये मेरी वहाँ भी मृत्यु न हो जाये। अरे राजा, जब तू अपने जीवन को ब्रह्म छत्र में प्रवेश कर लेगा और ब्रह्मचर्य को ऊँचा बना लेगा तो तेरी मृत्यु नहीं होगी अन्यथा अरे राजा!, तेरी मृत्यु तो सदा होने के लिये तत्पर रहती है। जब तेरे राष्ट्र में रुढ़ि नहीं होगी, धर्म के उपर रुढ़ि नहीं होगी, मानवता के उपर रुढ़ि नहीं होगी तो तेरी मृत्यु क्यों होने लगी। देखो, राम जब राष्ट्र का शासन करते थे तो तपस्या कर रहे हैं वनों में, भरत से कहते हैं मैं तपस्या करने जा रहा हूँ। वे १२ वर्ष का तप करते, ऋषि मुनि आते, साधारण प्राणी या कोई भी जब चाहे दर्शन करते। भरत भी इसी प्रकार के क्रियाकलाप करते रहते थे। वे सांय काल को दिवस काल में सदैव भ्रमण करते थे और भ्रमण करके प्रजाओं की भनोति लेते कि मेरी कोई प्रजा दुखी तो नहीं है। जब

इस प्रकार का कार्य राजा नहीं करेगा तो प्रजा कैसे ऊँची बनेगी। जब राजा प्रजा में नहीं जायेगा तो वह निकृष्टता को प्राप्त होगी। जब राजा प्रजा से अपनी वार्ता प्रगट करेगा, प्रजा राजा से अपनी वार्ता उद्‌गीत रुप में गायेंगे तो यह समाज पवित्र बनेगा। जिस राजा के राष्ट्र में मेरी पुत्रियां अपने शृंगार को नष्ट करके अपने उदर की पूर्ति करने वाली हों तो वह कोई राष्ट्र नहीं होता, वह अद्रुत-विद्रुत कहलाता है। तो विचार आता रहता है कि यह क्यों है ऐसा ? इसके मूल में अज्ञान है, इसके मूल में विद्या न है क्योंकि जहाँ का छात्र वर्ग जहाँ अपनी पुत्रियों को कुदृष्टिपान करने वाला बन गया है, रक्षक नहीं रहा, भक्षक बन गया है, अरे वह विद्यालय कैसे ऊँचे बनेंगे, यहाँ आचार्य कैसे महानता को प्राप्त हो सकेंगे। आज मैं इसलिये यह उच्चारण कर रहा हूँ कि इसके मूल में सब राजा का दोष है। राजा इस दोष से पातक बनता है।

विचार आता है कि जिस राजा के राष्ट्र में कामधेनु गऊओं को हनन किया जाता हो, जहाँ पशुवध किया जाता हो जो परमात्मा की धरोहर है, राष्ट्रीयता की धरोहर है। अरे वयाम भूतम देखो, आत्माम् भूतम ब्रह्माः। एक सम्प्रदायवादी कहता है गऊओं की रक्षा होनी चाहिए, एक सम्प्रदायवादी कहता है इससे हमारे शरीर बलवती होते है और एक कहता है नहीं होना चाहिए। अरे, राजा को ही तो हित और अहित को तो विचारना है, प्रजा कैसे विचार सकेगी। रुढ़िवाद को नष्ट करने के लिये राजा का जन्म होता है और यदि रुढ़िवाद नष्ट नहीं होता है, अज्ञान नष्ट नहीं होता है तो राष्ट्र का अपना कोई अतीत्व नहीं कहलाता। विचार आता रहता है कि **मानवता का नाम ही तो धर्म है**। राजा कहता है कि हमारा राष्ट्र निर्पेक्ष कहलाता है, अरे तुम किसकी अपेक्षा कर रहे हो ? मानो यदि नेत्रों में सुदृष्टिपान करना समाप्त हो जायेगा तो राष्ट्र की मृत्यु हो जाती है। यदि सु-शब्द नहीं रहा है तो शब्द ध्वनि नष्ट हो जाती है, राष्ट्र की मृत्यु हो गई है। अरे मानव, धर्म तेरी इन्द्रियों में है। राजा धर्म कहाँ स्वीकार कर रहा है ? जहाँ धर्म के स्थान बने हैं, जिनको

धर्म स्थान स्वीकार करके राष्ट्र उन्हीं में लगा रहता है। जब विचार आता है कि धर्म कहाँ है ? अरे धर्म मानव की इन्द्रियां में निहित रहता है और इन्द्रियों के उपर विचार विनिमय होना चाहिए, उसके उपर अनुसन्धान होना चाहिए। इसीलिये मैं जितना भी वाक् उच्चारण करुँ वह विशेष नहीं, आज का विचार केवल यह कि हे राजा, यदि तू अपना जीवन चाहता है, अपने में राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहता है तो तेरे राष्ट्र में रुढ़ि नहीं रहनी चाहिए और रुढ़ि जब नष्ट हो सकती है जब राजा विवेकी होगा, राजा ज्ञानी होगा और वह प्रजा को ज्ञानी बना करके, निर्भय बन करके अपने राष्ट्र में भ्रमण करेगा।

देखो, मैंने कई कालों में वार्तायें प्रगट की हैं, पूज्यपाद गुरुदेव की आज्ञा पाते हुए कि राष्ट्र को ऊँचा बनाना है तो **राष्ट्र जब ऊँचा बनेगा जब यहाँ आचार्य पवित्र बनेगा** और राजा के राष्ट्र में वैज्ञानिकता होनी चाहिए। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कई कालों में एक बहुत महत्वपूर्ण वाक् प्रगट किया कि विद्यालयों में ऐसे यंत्र होने चाहिए जैसे विद्यालय ब्रहे, ब्रह्मचारियों को आचार्य उपदेश दे रहा है, उसके मन की दशा क्या है, मन की गति क्या है, उस यंत्र में उसके चित्र आने चाहिए। उसको ब्रह्मचारी जब अपने में ग्रहण करेंगे तो कहेंगे कि यह अशुद्ध है परन्तु वह आचार्य मौन हो जायेगा और उस काल में विज्ञान का सदुपयोग होगा। विज्ञान का दुरुपयोग नहीं सतुपयोग होना चाहिए, चित्रावलियों में मेरी पुत्रियों के नृत्य नहीं होने चाहिए। उसे कहता है समाज मनो का रंजन, अरे मनो का रंजन तो प्रभु ने निर्माणित किया है। पूज्यपाद कल उच्चारण कर रहे थे कि मन को लगाना है तो ब्रह्मांड में लगा दो जहाँ लोक-लोकान्तरों की माला बना करके कंठ इससे सजातीय होता है, मन जिससे पवित्र होता है उसमें समाज क्यों नहीं लगा रहा है ? मंगलम ब्रह्मेः वर्णस्सुताहः, पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा इस समाज में मंगलत्व होना चाहिए। इसी प्रकार आज मैं राष्ट्र की कहाँ तक चर्चा करुँगा।

कई समय से महाराजा रघु की चर्चा हो रही है। रघुवंश में जितने राजा हुए हैं, उनकी बड़ी-बड़ी आयु हुई हैं। रघुवंश में जितने राजा हुए हैं उनकी बड़ी विशाल आयु रही है और इस आयु के उपर हम विचारते रहते हैं। उनका ब्रह्मचर्य और छात्रवत सब पवित्र बना रहा है और राजा का राष्ट्र स्वतः अपने में पवित्रता को धारण करके वहाँ रुढ़िवाद नहीं रहता। अज्ञानता से या संग्राम से एक दूसरे को नष्ट करके रुढ़ि समाप्त नहीं होगी। अरे, रुढ़ि जब समाप्त होती है जब ज्ञानी पुरुष होते हैं, राजा विवेकी होता है, ब्रह्मवेता होता है, ब्रह्मनिष्ठ होते हैं। ब्राह्मणाम् भूतम ब्रह्मा:, ब्राह्मण ऊँचे हों तो हम इस राष्ट्र को ऊँचा बना सकेंगे अन्यथा आज हम स्वरों मे उद्गीत गाते रहते है कि हमारी निर्वाचन प्रणाली पवित्र होनी चाहिए। **हमारा जीवन एक महानता में तभी रमण कर सकता है जब हम ज्ञानी बनेंगे।** ज्ञान का आभाव होने से ही मानव एक धर्म को नाना धर्म उच्चारण कर रहा है। राजा, अधिपति बन गया है वह भी नाना धर्म कह रहा है जो राष्ट्र का कर्मचारी है वह भी नाना धर्म कह रहा है। अरे, **धर्म तो एक होता है और रुढ़ियां अनेक होती हैं इसलिये रुढ़ियों को नष्ट करो और धर्म को अपनाने का प्रयास करो।** अब मैं अपने गुरुदेव से आज्ञा पाऊँगा क्योंकि आज मैं विशेष चर्चा नहीं प्रगट करुँगा।

मेरे प्यारे ऋषिवर ! अभी-अभी मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने हृदय की वेदना प्रगट की। उनकी वेदना बड़ी मार्मिक रही, उन्होंने कहा कि ज्ञान होना चाहिए। बिना ज्ञान के राष्ट्र कदापि ऊँचा नहीं बन सकता। इनका वाक्य प्रायः बड़ा विचित्र रहा है। कई समय से हम राजा रघु की चर्चा कर रहे हैं। राजा रघु के यहाँ ज्ञान भी था, विवेक भी था। ज्ञान और कर्म दोनों से राष्ट्र को ऊँचा बनाया जाता है। आज का वाक् अब यह सम्पन्न होने जा रहा है, मेरे प्यारे महानन्द जी कल भी कुछ शब्द उच्चारण करेंगे। आज इनके वाक्यों में बड़ी मार्मिकता रही है, देखो मिलन करने की बड़ी प्रवृत्ति रही है। आज का वाक् समाप्त अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

बरनाव
४-३-९२

याग पर महर्षि याज्ञवल्क्य के विचार

देखो मुनिवरो, आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद्द मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद वाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है जो यज्ञोमयी स्वरूप है, क्योंकि परमात्मा का जो यह ब्रह्मांड है यह अनन्तमयी यज्ञशाला के रूप में हमें प्रायः दृष्टिपात आता रहता है।

आज मुझे कहीं से यह प्रेरणा प्राप्त हो रही है कि याग के उपर कोई विचार विनिमय होना चाहिए। मैंने बहुत पुरातनकाल में वर्णन करते हुए कहा था कि हमारे ऋषि-मुनियों ने दो प्रकार के याग का व्यवधान किया है। एक आध्यात्मिकवाद है तो द्वितीय भौतिक विज्ञान कहा जाता है उसको भी यज्ञशाला के रूप में वर्णित किया गया है। मानो आध्यात्मिक और भौतिक यागी प्राणी अपने मानवीयत्व को ऊँचा बनाता है और राष्ट्र और समाज की एक सम्पदा बन करके मानवीयत्व में परिणित हो जाता है। आओ मुनिवरों, आज का हमारा वेद मंत्र क्या कह रहा है ? वेदमंत्र कहता है यज्ञनम ब्रह्माः वरणस्सुतम ब्रह्माः। ज़ैसे याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा है कि यह जो याग है यह मानो इस संसार की नाभि है। याग कहते हैं जितने भी संसार के सु-क्रिया-कलाप हैं, सुकर्म हैं, सुविचार हैं। यदि संसार से ये चले जाते हैं तो संसार का नादम ब्रह्मेः, वह नाद ही समाप्त हो जाता है। **जितने भी सुक्रिया कलाप हैं उनका नाम याग है।** इसलिये मानव के हृदय में सुक्रियाओं की तरंगों का प्रादुर्भाव होना

चाहिए जिससे हृदय अगम्यता को प्राप्त होता हुआ, ज्योतिर्लिंग में प्रवेश करता हुआ अपने को ऊँचा बनाता है। आज का हमारा वेद मंत्र यह कहता है कि हम परमपिता परमात्मा की महती और उसकी अनन्तता के उपर सदैव विचार-विनिमय करते रहें। यह परमात्मा का जो जगत है यह अनन्तमयी माना गया है, यह अनन्तवत कहलाता है तो इसीलिये अनन्तवान प्रभु की महिमा का हमें गुणगान गाना चाहिए।

मुनिवरो देखो, मैंने तुम्हें याग के उपर कोई महान विचार नहीं देना है परन्तु परमात्मा ने जब सृष्टि का सृजन किया तो एक प्रकार की यज्ञशाला का उन्होंने निर्माण किया। यज्ञशाला का निर्माण करके स्वयं परमपिता परमात्मा इस संसार रूपी याग के ब्रह्मा हैं, आत्मा यजमान है और ये पंचमहाभूत इसके होता कहलाये जाते हैं। जो हूत हो रहा है यही हूत मानो विद्यालय में, आचार्य के गृह में होता है, यही राजा के राष्ट्रीयत्व में होता है तो यह संसार यागमयी जगत हमें दृष्टिपात आता रहता है। आज बेटा, मैं तुम्हें याग के सम्बन्ध में विशेष चर्चा न देता हुआ केवल यह कि हमारा याग पवित्र होना चाहिए जिससे हमारा आंतरिक और वाह्य जगत दोनों उर्ध्वा में गमन करते रहें। आओ मेरे प्यारे देखो, मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें वाक् प्रगट करते हुए कहा था, आज मैं तुम्हें संक्षिप्त परिचय अवश्य देना चाहूँगा जो पुरातन काल में भी इन वाक्यों का विश्लेषण किया और आज भी मुनिवरो पुनः से उन वाक्यों के उपर विचार विनिमय करना हमारा कर्त्तव्य है। मेरे प्यारे देखो, मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जिस काल में महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के यहाँ नैतिकता जब ब्रह्मचारियों को प्रदान की जाती तो उस समय आचार्य प्रातःकालीन यज्ञशाला में विद्यमान हो करके ब्रह्मचारियों को वेद मंत्रों का उद्गीत गाता हुआ कहता हे ब्रह्मचारी, तू गारपथ्य अग्नि का ध्यान कर, तू अग्नि को प्रदीप्त कर और वह कहता हे गृह में वास करने वालो, तुम गृहपथ्य नाम की अग्नि का चयन करो। वह कहता है हे वानप्रस्थ में रहने वाले, हे प्राणवर्धक देखो, तुम अपनी आव्हनीय नाम की अग्नि का चयन करो। अग्नि का चयन करने वाला अग्नि

की महानता की प्रतिभा में रत्त हो जाता है। विचार आता रहता है, हम परमपिता परमात्मा के उस अनुवृत्तियों को ध्यानाव्यस्थित करते रहें।

इस प्रकार जब उन्होंने वर्णन किया तो एक यज्ञदत्त नाम का ब्रह्मचारी उपस्थित हुआ और उसने कहा प्रभु हम याग कैसे करें ? उन्होंने कहा यागाम भूतम ब्रह्मणा व्रत्तम् यज्ञम ब्रव्हो कृत्यम देवाः कि यदि तुम्हें याग करना है तो तुम अपने हृदय रूपी अग्नि को जागरूकता में लाने का प्रयास करो। यज्ञम भूतम ब्रह्माः वर्णस्सुतम देवाः, मेरे प्यारे देखो, हमारे यहाँ वशिष्ठ मुनि महाराज इत्यादियों की चर्चायें आती रहती है। वशिष्ठ मुनि महाराज के यहाँ भी प्रातःकालीन नैतिकवाद की चर्चायें होती रही हैं अथवा यागों का चलन होता रहा है। इसी प्रकार राम ब्रह्माः, देखो, अयोध्या में राष्ट्रवाद की विवेचना करते, उनके यहाँ भी याग का व्यवधान होता रहा है। प्रातःकालीन राम अपने राष्ट्र की यज्ञशाला में वे प्रायः यागों में परिणित रहते थे। मेरे प्यारे, आज मैं इस क्षेत्र में तुम्हें विशेष विवेचना नहीं दूँगा, केवल यह कि हमारे यहाँ नैतिकवाद की चर्चा करते हुए ऋषि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज से जब ब्रह्मचारी ने यह कहा कि प्रभु हम याग कैसे करें तो उन्होंने कहा यदि तुम्हें याग करना है तो तुम अग्नम ब्रह्मा देखो, अग्नि को प्रदीप्त करो और उस अग्नि में चार प्रकार के साकल्य का हूत करो। मानो जिस **साकल्य में मधुपन हो, सुगन्धित हो, पौष्टिक हो और प्राणवर्धक हो।** यह सर्वत्र औषधियों को ले करके देखो, मूढ़यम समा आकृतम देवो, पुष्टाम भूतम ब्रह्माः, यह अपने में पुष्टिकारक कहलाता है। इन यागों का अपने में व्यवधान करो जिससे तुम्हारा याग पवित्रता को प्राप्त होता रहे।

मेरे प्यारे ब्रह्मचारी ने कहा कि प्रभु, यह साकल्य हमें कैसे प्राप्त हों। उन्होंने कहा तुम यज्ञशाला का निर्माण कर उसके अंग-संग विद्यमान हो जाओ और हूत करो। नाना प्रकार का साकल्य मधुपन में होना चाहिए, पुष्टिकारक होना चाहिए, सुगन्धित होना चाहिए, अपने में अमृताम अमृत को देने वाला हो तो

उसके द्वारा तुम याग करो। याग करने का अभिप्राय यह कि यज्ञशाला में तुम हूत करो। अग्नि को प्रदीप्त कर तुम अग्नि का व्यवधान करो। यज्ञदत्त ब्रह्मचारी ने कहा प्रभु यह वाक् तो हमने स्वीकार कर लिया परन्तु यदि हमें यह सुविधा न हो, यज्ञशाला भी न हो और मानो साकल्य भी न हो तो प्रभु हम याग कैसे करें ? उन्होंने कहा यदि यह न हो तो तुम अग्नि को समिधाओं के द्वारा प्रदीप्त करके कहो कि प्राणाय स्वाहा:, अपानाय स्वाहा:, व्यानाय स्वाहा:, समानाय स्वाहा:, उदानाय स्वाहा कह करके हूत प्रारम्भ करो क्योंकि प्राण ही हमारा जीवन है। प्राण ही अरबों-खरबों परमाणुओं को लाता है, अरबों-खरबों परमाणुओं को आंतरिक जगत से वाह्य जगत में प्रवेश करा देता है। अपान उसको अपने में समन्वय करता है और व्यान उसका निरीक्षण करता है और समान, मानो सर्वत्रता में रमण करता है और उदान मेरे प्यारे देखो, उद्गीत गाता रहता है। इस प्रकार तुम अपने में याग करो और कहो कि प्राणाय स्वाहा:, अपानाय स्वाहा: । यजमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो प्राणों का हूत करे क्योंकि प्राण ही तो भोगता रहता है, प्राण ही तो भक्षण करता है क्योंकि प्राण ही अवधान करता रहता है।

मेरे प्यारे याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि तुम समिधाओं के द्वारा अग्नि का ध्यान करो और अग्नि में हूत प्रारम्भ करो क्योंकि **अग्नि देवताओं का मुख कहलाता है।** देवताम मुखानाम भूतम ब्रह्मा लोकाम, मानो यह देवताओं का मुख है, देवता इसी के माध्यम से सर्वत्रता को प्राप्त करते रहते हैं। मेरे प्यारे यज्ञदत्त ब्रह्मचारी ने कहा कि प्रभु यह भी हमने स्वीकार कर लिया है परन्तु यदि कहीं ऐसी स्थलि हो जहाँ अग्नि भी न हो और समिधा भी न हो तो प्रभु अग्नम ब्रह्मा: जब याग कैसे करें ? उन्होंने कहा यदि समिधा न हो तो तुम जल को अपनी अंजली में लो और जल से कहो कि प्राणाय स्वाहा:, अपानाय स्वाहा:, व्यानाम स्वाहा:, समानाय स्वाहा:, उदानाय स्वाहा: । इस प्रकार तुम हूत प्रारम्भ करो और कहो कि प्राणम ब्रह्मा लोकाम ब्रहे। मानो देखो, वह ज़ल को अंजली में ले करके जब जल के द्वारा ही स्वाहा: दोगे तो जल का पात्र

तुम्हारे समीप होना चाहिए क्योंकि जल की तरंगें उत्पन्न हो अग्नि से मिलान करती हैं। अग्नि की तरंगें उत्पन्न हो करके ही तो वायुमंडल को निर्माणित करती हैं। तो इसी प्रकार देखो, अग्नम ब्रह्मा:, यही तो मानो देखो, जलम ब्रह्मा: पिंडाम भूतम, यह जल ही तो पिंड बनाने वाला है तो इसीलिये जल तरलतव पदार्थ माना गया है, चाहे वह इस पृथ्वीमंडल पर हो चाहे वह सूर्य मंडल में हो, चाहे वह चन्द्र मंडल में, किसी भी लोक-लोकान्तर में नृत करने वाला परमाणु क्यों न हो उसमें तरलता की जो वृत्तियां रहती हैं, वही आगे चल करके पिंड के रूप में परिणित हो जाती हैं।

मेरे प्यारे देखो जब इस प्रकार ऋषि ने अपना मन्तव्य दिया तो उस समय यज्ञदत्त ब्रह्मचारी ने कहा प्रभु, मैं इसकी विशेष व्याख्या नहीं कराना चाहता हूँ। आचार्यों ने जैसा मुझे वर्णन कराया है, मेरा एक प्रश्न और है कि हे प्रभु कहीं जल भी हमें प्राप्त न हो तो याग कैसे करेंगे ? उन्होंने कहा कि यदि जल भी तुम्हें प्राप्त न हो तो तुम पृथ्वी की रज को ले करके कहो प्राणाय स्वाहा:, अपानाय स्वाहा:, व्यानाय स्वाहा:, समानाय स्वाहा:, उदानाय स्वाहा: कह करके हूत प्रारम्भ करो। उस हूत को प्रारम्भ करते तुम अपने में रत्त हो जाओ। विचार आता रहता है मुनिवरो, अमृतम ब्रह्मा लोक अप्रते, यही तो पिंड का स्वामी है। माता के गर्भस्थल में जब तरलतव, यह वनस्पतियों का रस जाता है तो यही पिंडम भूतम, देखो इसमें गुरुतव होता है, वही तो पिंड का मूल कहा जाता है। मेरे प्यारे, जब लोक-लोकान्तरों की रचना होती है तो उसमें गुरुतव होने से, पृथ्वी के रज होने से ही मुनिवरो, नाना पिंडों का निर्माण होता है। वह कोई पिंड पृथ्वी के रूप में है वही द्वितीय पिंड मंगल के रूप में है, कहीं बृहस्पति के रूप में है, कहीं वही पिंडम ब्रह्मा देखो, बुद्ध इत्यादि लोक-लोकान्तरों के रूप में दृष्टिपात आता रहता है। यह जो जगत है यह पिंडाकार माना गया है और पिंडाकार का देखो, बिना गुरुतव पदार्थ के कदापि निर्माण नहीं होता।

इसीलिये वेद के ऋषि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने ब्रह्मचारियों के मध्य में कहा कि हे ब्रह्मचारियो, यह जो तरल ब्रहे, यह जो गुरुतव, मानो पृथ्वी की रज है अरे इसी रज के कण जब माता के गर्भ में जाते हैं तो हम जैसे शरीरों का निर्माण होता है, पिंडों का, पंचमहाभूतों का निर्माण होता रहता है और वही तरंगें जब उर्ध्वा में गमन करती हैं तो सूर्यमंडल का वह पिंड बनता रहता है। एक पिंड नहीं है, नाना पिंडों की विवेचना बेटा, मैंने तुम्हें पूर्व काल में वर्णन की हैं। कोई माता के रूप में पिंड है, कोई पितर के रूप में पिंड है, कोई पुत्रों के रूप में पिंड बना हुआ है। मानो देखो, ये नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों, निहारिका और आकाश गंगा के रूप में यह पिंडाकार जगत मुझे दृष्टिपात हो रहा है। विचार आता रहता है, यह पिंडम ब्रह्माः, पिंड का निर्माण करने वाला यह कौन है, कौन निर्माण कर रहा है ? वह चेतन्य देव जो रचनाकार है, वही तो इन पंचमहाभूतों को एकत्रित करता हुआ संगठित बनाता है और उसमें अपना तेजोमयी दे करके इसका निर्माण प्रारम्भ होता है। विचार आता रहता है कि पिंडों का आकार जब बनता है, चाहे वह पृथ्वी के रूप में हो, चाहे वह मंगल के रूप में हो, चाहे वह बृहस्पति के रूप में हो, चाहे मुनिवरो देखो वह मंगलम ब्रहे, वह आरुणी मंडल के रूप में हो, चाहे वह पुष्प नक्षत्र के रूप में हो, नाना प्रकार का जो पिंडाकार जगत दृष्टिपात आ रहा है यह सर्वत्र इन पंचमहाभूतों में गुरुतव इसमें विशेषतः प्रधान रहता है। मेरे प्यारे देखो, तीन प्रकार के परमाणु हैं जिनके उपर सर्वत्र विज्ञान निहित रहता है। वैज्ञानिक कहते हैं कि तीन प्रकार का परमाणुवाद है। **तेजोमयी, तरलतव और गुरुतव यह तीन प्रकार के परमाणु हैं वायु इनको गति देता है और अंतरिक्ष में ये गति करते रहते हैं।** इसलिये प्रकृति की पांच ही वृत्तियां मानी जाती हैं।

विचार आता रहता है कि कौन निर्माण करने वाला है। निर्माणवेता प्रभु है अपनी-अपनी आभा में गुरुतव पदार्थ को दे करके निर्माणित करते

रहे हैं। विज्ञानवेता अपनी विज्ञानशाला में यंत्र का निर्माण करता है और यंत्र का आयु देता है। मेरे प्यारे देखो, मैंने तुम्हें कई काल में कहा था कि महाराजा भीम और घटोत्कच्छ दोनों ने अपनी विज्ञानशाला में एक यंत्र का निर्माण किया था। **उनका यंत्र वर्तमान में भी वायुमंडल में गमन कर रहा है।** गमनम ब्रह्मा गमनम ब्रव्हे वृत्तम, **एक-एक लाख वर्षों की आयु के यंत्र वायुमंडल में गतिमान हो रहे हैं।** आज मैं इस सम्बन्ध में विचार न देता हुआ केवल यह कि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा हे ब्रह्मचारियो तुम पंचमहाभूतों के उपर विचारो। यह आत्मा का लोक है क्योंकि आत्माम् ज्ञानम् भूतम ब्रह्मेः, वही मेरे प्यारे, अपने में रत्त होता रहता है। विचार आता है, वेद के ऋषि याज्ञवल्क्य ब्रह्मचारियों के मध्य में कहते हैं कि हे ब्रह्मचारियो तुम नैतिकता को ऊँचा बनाओ और गुरुतव परमाणु के उपर विचार विनिमय करो। माता के गर्भस्थल में जब रेतस्य प्रवेश होता है तो वहाँ शिशु का वृत्त होता है तो मानो देखो, एक ग्रंथी का निर्माण होता है और निर्माण हो करके मानव समाज की वृत्तियां उत्पन्न होने को वह पिंड कहाँ बन रहा है ? माता के गर्भ स्थल में वही पिंड है जिसका समन्वय सूर्य मंडल से है, जिसका समन्वय चन्द्रमा से है, जिसका समन्वय मानो द्यौ से कहा जाता है। नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों का मंडल बन करके लघु मस्तिष्क का निर्माण होता है। नाना प्रकार की निर्माणता कही जाती है और वैज्ञानिक जन इसके उपर अनुसन्धान करते रहे हैं। विचारवेत्ताओं ने कहा तुम गुरुतव परमाणुओं को, पृथ्वी की रज को ले करके कहो प्राणाय स्वाहाः, अपानाय स्वाहाः, व्यानाय स्वाह्मः, समानाय स्वाहाः और उदानाय स्वाहाः कह करके अवृत्तों को प्राप्त हो जाओ।

मेरे पुत्रो देखो, ऋषि ने इस प्रकार वर्णन किया और वे याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि हे ब्रह्मचारियो यही पिंडम् ब्रह्मेः, मानव के पिंड का जब निर्माण किया जाता है तो इसमें ७२ करोड़ ७२ लाख १० हजार २०२ नाड़ियों का निर्माण होता रहा है। निर्माणवेत्ता निर्माण करता है। कहीं वही बुद्धि का माध्यम विद्यमान

है। देखो, बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा, प्रज्ञावी मानो ये बुद्धियों के अवृत कहलाये जाते हैं। मन के विकार हैं, मन की नाना प्रकार की धारायें मानी जाती हैं। वही चित्त है, वही अहंकार है और वही मानो बुद्धि का जगत कहा जाता है। इन सबका समन्वय अंतरिक्ष, परमात्मा के ब्रह्मांड से रहता है जो लोक-लोकान्तरों की प्रतिभा में रत्त रहता है। मेरे प्यारे देखो, उन्होंने कहा ब्रह्मेः वर्तम, मानो माता के गर्भ स्थल में जब पिंड का निर्माण होता है तो देवताओं में एक विशेष क्रांति आती है, धीमी-धीमी क्रांति आती है, देवत्व की धीमो-धीमी चर्चायें होती है। मेरे प्यारे देखो, चन्द्रमा अमृत देना प्रारम्भ करता है, सूर्य प्रकाश देता है, अग्नि उष्ण बनाती है। अग्नि उष्ण बना करके मानम ब्रव्हे कृतम और यह तरल पदार्थ मानो उसकी आभा में रत्त रहता है और पृथ्वी गुरुतव देना प्रारम्भ करती है जिससे यह नाना पिंडों का निर्माण हो जाता है। मानव पिंड का निर्माण माता के गर्भ स्थल में और निर्माणवेता वह चेतन्य देव है। माता को यह प्रतीत नहीं होता कि कौन निर्माण करने वाला है, कौन निर्माणवेत्ता है। हे माता तुझे वेद ने धेनु के रूप में परिणित किया है, धेनु नामों से तुझे पुकारा है, उद्‌गीत रूपों में गाया है तो मानो तू अपने में महान है।

इस प्रकार बेटा, जब ऋषि ने वर्णन किया, उन्होंने कहा कि इस पृथ्वी की रज को ले करके कहो प्राणाय स्वाहाः, क्योंकि रज नहीं होगी तो प्राण अपने में सुकत बन जायेगा और प्राणों का अपना कोई महत्व नहीं रहेगा। इसलिये मानब्रहे, देखो गुरुतव तुम्हारे द्वारा होना चाहिए। यह पृथ्वी का स्वरूप माना गया है। विचारवेत्ता ने कहा, हे यज्ञदत्त ब्रह्मचारी, तुम अपने में याग का वृत्ती करो। मेरे प्यारे यज्ञदत्त ब्रह्मचारी ने नतमस्तक हो करके कहा कि हे प्रभु, मैं यह जानना और चाहता हूँ यदि भगवन् ब्रह्मणे क्रत्तम देवत्वाम भूतम ब्रह्माः, यदि भगवन् कहीं रज भी न प्राप्त हो तो हम याग कैसे करेंगे ? उन्होंने कहा कहीं तुम्हें रज भी प्राप्त न हो तो तुम एकंत स्थलि में विद्यमान हो करके वेद मंत्रों का पठन-पाठन करते रहो और कहो कि प्राणाय स्वाहाः, अपानाय स्वाहाः, व्यानाय

स्वाहा:, उदानाय स्वाहा:, समानांय स्वाहा: कह करके हूत प्रारम्भ करो और मुखारबिन्दु से कहो स्वाहा: अमृतम देव: प्रमाणम ब्रहे व्रत्तम स्वाहा: ऐसा उद्गीत गाना तुम प्रारम्भ करो जिससे तुम्हारे जीवन में एक महानता की ज्योति जागरूक हो जाये और तुम स्वाहा: कह करके वायुमंडल को पवित्र करो। **जब प्रत्येक देवकन्यायें, प्रत्येक मेरी पुत्रियां प्रातः कालीन स्वाहाः स्वाहाः ध्वनि का गुंजन करती हैं तो गृह के बहुत से अशुद्ध परमाणु नष्ट हो जाते हैं और वाणी अपनी महत्वता को प्राप्त हो करके वहाँ का वायुमंडल पवित्र बन जाता है।**

मुझे वह काल स्मरण है, ऋषि कहता है कि यजनम ब्रह्मा: यजनम अवृति देवत्वाम इजाहा, जब याज्ञिक अपने याग को पूर्ण करता है तो अपने में महानता का दर्शन करता है। विचार आता रहता है, वेद का ऋषि कहता है ममंत्वम ब्रह्मे: ममंत्वम देवा: ममंत्वम ब्रह्मणा वृत्तम लोकाह वसुत्रे: । मेरे प्यारे देखो, उस आभा को जानने के लिये सदैव तत्पर रहना चाहते हो तो अपनी एकंत स्थलि में विद्यमान हो करके कहो अग्नम ब्रह्मा: स्वाहा: अग्नम ब्रव्हे क्रतम अन्नाम भूक्प्रहे वाचन्न मम ब्रहे देवत्वाम स्वाहा: । ऐसा वेद मंत्रों का उद्गीत गाना चाहिए क्योंकि **वेद मंत्र जितना अंतरिक्ष में गुंजायमान होता है उतना ही वायुमंडल का प्रदूषण समाप्त हो जाता है।** वेद मंत्र की तरंगें उस प्रदूषण के परमाणुओं को निगलती चली जाती है और अग्नि की धाराओं पर साकल्य विद्यमान हो कर, वही शब्द, वही चित्र और वही स्वाहा: की ध्वनि द्यौ में प्रवेश हो जाती है।

मेरे प्यारे देखो, ऋषि ने अपना वर्णन करते हुए कहा संम्भू ब्रह्मणा लोकाम, ऐसे लोक-लोकान्तरों की रचना करने वाला वह देवत्वम, मानो देखो अपने मन, कर्म, वचन को एकाग्र करते हुए तुम सामान्यता में उसका उद्गीत गाओ और उद्गीत गा करके स्वाहा: उच्चारण करो, अग्न्याध्यान करो। परन्तु देखो यदि कोई भी पदार्थ तुंम्हारे द्वारा नहीं है, देखो समिधा भी नहीं है, साकल्य भी

नहीं है, यज्ञशाला भी नहीं है तो उस समय तुम अपने शरीर को और इस मुखारबिन्दु को यज्ञशाला स्वीकार करके, हृदयरूपी यज्ञशाला में तुम प्रत्येक इन्द्रियों के विषय को एकाग्र करके कहो अमृतम ब्रह्माः स्वाहाः। ऐसा स्वाहाः उद्‌गीत रूप में गाना प्रारम्भ करो।

मेरे पुत्रो देखो, जब ऋषि ने इस प्रकार अपने वाक् वर्णन किये तो ब्रह्मचारी अपने में धन्य-धन्य उच्चारण करने लगे। ब्रह्मचारियों ने कहा प्रभु आपको धन्य है। याज्ञवल्क्य ऋषि की उस विज्ञानशाला में मानो कौनम वृत्तम ब्रह्माः वस्सुतेवाः। तो विचार आता रहता है कि हम अपने में अपनेपन का ध्यानावस्थित होते रहें जिससे बेटा, हमारा जीवन एक महानता की ज्योति में प्रवेश होता रहे और महान बनते हमारे जीवन में एक महानता अपने में प्रवेश होती हम अपने मनोत्व प्रव्हाः, अपनी इन्द्रियों में धर्म को विचार - विनिमय करने वाले बनें। मानो नेत्रों में सुदृष्टि हो, श्रोत्रों में सु-शब्द हों और वाणी में सु-शब्द हों और घ्राण में सु- सुगंधि हो और त्वचा में सु-प्रीति हो तो मेरे प्यारे देखो, उसी का नाम धर्म है। धर्म कहाँ रहता है ? वेद का ऋषि कहता है कि **धर्म मानव की पांचों इन्द्रियों में विद्यमान रहता है।** अब मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रगट नहीं करूंगा। याज्ञवल्क्य मुनि महाराज इस प्रकार का अपना विश्लेष करते हुए अपने में मौन हो गये। उन्होंने इस संसार रूपी ब्रह्मांड को मापते हुए कहा कि यह यज्ञशाला है, परमात्मा इसका ब्रह्मा है, आत्मा यजमान है, पंचमहाभूत देखो, हूत रहे हैं। यह परमात्मा का याग चल रहा है। अब मैं अपने प्यारे महानन्द जी से जैसा उनका वृत्त है, दो शब्दों में अपने वाक् तो अवृत्यम।

महानन्द जी का प्रवचन

"ओ३म् यमा वृथम मन वर्चाः वर्चस्वं धनम माहम देवाः।" मेरें पूज्यपाद गुरुदेव, अथवा मेरे भद्र ऋषि मंडल अभी-अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव गागर में सागर की कल्पना कर रहे थे और गागर को अपने में मानब्रव्हे सागर को गागर में परिणित करने के लिए अपने विचारों में व्यक्त थे। उनका एक-एक

शब्द बड़ा अमूल्य है और वह मूल्यम ब्रह्माः कृत्तम बहु अवृत्तियों में रत्त होने वाला है। आज मैं इस सम्बन्ध में कोई विचार नहीं दूंगा क्योंकि पूज्यपाद गुरुदेव के वाक्यों की मैं पुनरुक्ति करूं यह मुझे शोभा नहीं देता है। परन्तु विचार केवल हमारा यह है कि आज जहाँ हमारी यह आकाश वाणी जा रही है यहाँ मानो देखो, याग का आयोजन हुआ। यह इतनी महान स्थलि रही है किसी काल में कि समय-समय पर इस स्थलि पर नाना प्रकार के व्यवधान भी हुए हैं, पापावरण भी हुए हैं परन्तु यह अपने में यज्ञ स्थलि बन करके रही है।

लाक्षागृह बरनावा

आज मुझे वह काल स्मरण है जब महर्षि व्यास और महात्मा जैमिनी इत्यादियों का यहाँ आगमन होता रहा है और यहाँ नदियों के तट पर यागों का चयन होता रहा है। मैंने पुरातन काल में भी अपने पूज्यपाद गुरुदेव से वर्णन किया था कि **यह वह स्थलि है जहाँ महर्षि व्यास का जीवन व्यतीत हुआ और व्यास जी ने यहाँ विद्यालय की स्थापना की थी।** यहाँ पांडव और कौरव बाल्यकाल्य में शिक्षा का पठन-पाठन करते रहे हैं। उसके पश्चात् यहाँ, यह वही स्थलि है जहाँ महाराजा दुर्योधन ने पांडवों को नष्ट करने के लिए एक अशुभ गृह का निर्माण किया था। परन्तु वह यहाँ से चांन्द्रांग बन में को चले गये और वह गृह अग्नि के मुखारबिन्दु में परिणित हो गया। यह वह स्थलि है जहाँ भीम और घटोत्कच्छ दोनों अपनी एक सूक्ष्म विज्ञानशाला बना करके यंत्रों का निर्माण कर उन्हें अंतरिक्ष में त्यागते रहते थे। आज भी समुद्र में ऐसी एक छाया आती है जिस छाया के आने से वहाँ जो भी यंत्र जाता है उस छाया में समाप्त हो जाता है। यहाँ के वैज्ञानिक वर्तमान काल में बड़े चिन्तित होते रहते हैं परन्तु मैने पुरातन काल में कहा था कि **वह महाराजा भीम और घटोत्कच्छ का निर्माणित किया हुआ एक यंत्र है जो अंतरिक्ष में गमन कर रहा है। अंतरिक्ष में कही वह स्थिर भी हो जाता है और वह स्थिर होने पर समुद्रों में जहाँ छाया जाती है**

उस परिनिधि में जो भी यंत्र है वह नष्ट हो जाता है उसका एक अंकुर भी वैज्ञानिकों को प्राप्त नहीं होता।

मैंने बहुत पुरातन काल में वर्णन करते हुए कहा कि यह ऐसी स्थलि रही है कि यहाँ नाना प्रकार की विद्या का चयन होता रहा है और विद्यालयों में यहाँ धनुर्विद्यायें, वैदिक विद्यायें और वेद का पठन-पाठन पुरातन काल से ही, यह महाभारत के काल से होता रहा है। उससे पूर्व काल में भी नदियों के तट पर अपने- अपने पर्व मनाने के लिए ऋषि मुनि रहे हैं। मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से उच्चानम ब्रह्मेः देखो, उद्गीत गाते हुए कहा था कि पुरातन काल में यहाँ अमृतम ब्रह्मेः देखो अवृत्ति देवत्वाम बम ब्रव्हे देवा, यहाँ एक विज्ञानशाला का निर्माण किया गया और यहाँ महाराजा व्यास के पश्चात् **महाराजा द्रोण का भी यहाँ शिक्षालय रहा है** और उन्होंने यहाँ शिक्षा देना प्रारम्भ किया। यहीं पांडवों को नष्ट करने की एक भूमिका बनाई। परन्तु वे पांचाल राष्ट्र को चले गये और देखो वह गृह अग्नि में समाप्त हो गया।

राष्ट्रवाद

विचार आता रहता है, मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से उच्चारण करता रहता हूँ। समय-समय पर यहाँ कुछ रूढ़िवादियों ने धर्म नाम पर कुछ रूढ़ियां बना करके नाना प्रकार की अशुभता का प्रसार किया। अशुभता यहाँ देखो, वृत्ति हो गई। उसके पश्चात्, न प्रतीत यह कैसा भूमि का अपना संस्कार होता है, वायुमंडल के अपने क्रिया-कलाप होते हैं अरे, जहाँ अशुभ होते हैं वही शुभ कर्म होते हैं। जहाँ अशुद्ध वाणियां गुंजायमान होती हैं वहीं शुद्धिकरण देखो, वेद के मंत्रों का गुंजन होता है और स्वाहाः स्वाहाः की ध्वनियों से यह वायुमंडल अपने में पवित्रता का अवधान कर रहा है। आज मैं राष्ट्रवाद की चर्चा तो विशेष नहीं देना चाहता हूँ , राष्ट्रवाद को केवल इतना ही उच्चारण करना चाहता हूँ कि यदि राष्ट्रवाद को ऊँचा बनाना है, विज्ञान को महान बनाना हैं तो राजा

को ब्रह्मवेत्ता बनना होगा और ब्रह्मवेत्ता बन करके प्रजा को एक शुभ निर्देश देना होगा, शुभ प्रवृत्ति देनी होगी। मैंने बहुत पुरातन काल में कहा है कि जितने भी नाना प्रकार के रूढ़िवादियों के आचार्य हैं, उन आचार्यों को एकत्रित करके उनका शास्त्रार्थ राजा की मध्यस्थता में होना चाहिए। राजा ब्रह्मज्ञानी हो करके उसका अपने में निर्णय देने वाला हो और ये नाना प्रकार की रूढ़ियां समाप्त हो करके, एकोकी विचार विनिमय करते राष्ट्र को ऊंचा बनाना चाहिए। मैंने बहुत पुरातन काल में कहा है कि जब तक पृथ्वी मंडल पर समाज में ईश्वर के नाम पर नाना प्रकार की रूढ़ियां बनी रहेंगी, वे रूढ़ियां ही राष्ट्र और समाज का घातक बन करके इस समाज को विनाश के मार्ग पर ले जाती चली जा रही हैं। मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा कि राजा को ब्रह्मवेत्ता होना चाहिए क्योंकि जब तक राजा ब्रह्मवेत्ता नहीं होगा, चरित्र उसका महान नहीं बनेगा, उसका आहार व्यवहार पवित्र नहीं बनेगा जब तक राष्ट्र में शांति की स्थापना नहीं हुआ करती।

आज का विचार-विनिमय क्या कि मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव का वाक् वर्णन करूँ कि **यहाँ एक समय याग महात्मा जैमिनी ने किया हैं** और यहाँ व्यास मुनि भी यागों का व्यवधान करते रहे हैं। यहाँ गुरु द्रोणाचार्य अपने में धनुर्याग विज्ञान भूतम देखो, नाना प्रकार के यागों का व्यवधान करने वाले ऋषि मुनि देखो, महात्मा दुर्वासा शिक्षालयों में आ करके शिक्षा देते रहे हैं। विचार आता रहता है यह पवित्रता को रमण करने वाली पुनीत भूमि है। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को वर्णन करता रहता हूँ कि यहाँ विज्ञानशाला ऐसी रही है कि **आज भी घटोत्कच्छ के वैज्ञानिक यंत्र वायुमंडल में गमन कर रहे हैं। यहाँ का वैज्ञानिक जब भी अंतरिक्ष में जाता है, चंद्रमा के उपरले कक्ष में जाता है, मंगल के ऊर्ध्वा कक्ष में जाता है तो उनका यान या तो नष्ट हो जाता है या यान में किसी प्रकार की त्रुटियां आ जाती हैं। उन यंत्रों का जब मिलन होता है तो वे उसे अवृत कर देते हैं।**

विचार आता रहता है, मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को वर्णन करा रहा हूँ, आज मैं इसलिये अपने उद्‌गीत गा रहा हूँ कि यहाँ एक याग का आयोजन हुआ है और मैं यजमान को अपना आशीष देना चाहता हूँ। हे यजमान, तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे, तेरी महानता बनी रहे। हे यजमान, जब तू **यज्ञशाला में विद्यमान हो तेरा मन, वचन, कर्म एकाग्र होता है तो तेरा स्वाहाः द्यौ को प्राप्त होता है** और द्यौ से वही तुझे प्राप्त होता रहता है। हे यजमान, मेरा अर्न्तात्मा यजमान के साथ रहता है और यजमान के साथ रह करके मैं कहता हूँ कि हे यजमान तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे और इन्द्रियों में सदैव शक्ति बनी रहे क्योंकि इन्द्रियों की शक्ति ही देवत्व को प्राप्त कराती है और जब वह शक्ति उपलब्ध् हो जाती है तो वही मानव कर्मठता की आभा में रत्त रहते हैं। तो आज का विचार-विनिमय क्या कि मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से उद्‌गीत गाने आया हूँ कि यहाँ एक याग का आयोजन हुआ और मेरा अर्न्तात्मा बड़ा प्रसन्न है, मैं प्रसन्नता की प्रतिभा में सदैव रत्त रहता हूँ। हे यजमान, तेरे जीवन का सौभाग्य अखंड बना रहे और तेरा याग तुझे ही प्राप्त होता रहे, ऐसा मेरा मन्तव्य रहता है। आज का विचार केवल यह कि हम अपने जीवन में राष्ट्रवाद, ईश्वरवाद, धर्म और मानवीयता की रक्षा करने वाले बनें। क्योंकि धर्म कहते हैं जो अपने कर्त्तव्य का पालन करता है और जब मानव कर्त्तव्य से विहीन हो जाता है तो न वह धर्म रहता है और न मानवता रहती है, अधर्मता में परिणित हो जाता है। इसीलिये वर्तमान इस काल में मानवीयता की आवश्यकता है।

हे मानव, तू सुरा, सुन्दरी और द्रव्य की लोलुपता में लिप्त न हो। ये सर्वत्र होने चाहिएं परन्तु सामान्य रूप से होने चाहिए। जब तू सुरा सुन्दरी में अपने मानवीय जीवन, अपने द्रव्य को नष्ट कर रहा है वही द्रव्य तेरी हीनता को दृष्टिपात कराता रहता है। वही **द्रव्य जब सु-कार्य करता है वही तुझे स्वर्ग का गामी बना देता है**। वहीं तो द्रव्य है जो नार्किक बनाता है वही

द्रव्य है जो तुम्हें अमृतम ब्रह्मः, तुम्हें नार्किकता में और वहीं स्वर्ग में ले जाता है। तो इससे स्वर्ग के गामी बनों और राष्ट्र और समाज को ऊंचा बनाते हुए राजा को कहो कि हे राजा, तू ब्रह्मवेत्ता बन और ब्रह्मवेत्ता बन करके तू सुरा और सुन्दरियों में रमण करने वाला न हो क्योंकि ऐसे राजा का चरित्र और इन्द्रियों पर संयम नहीं होता है। निर्भय रहना चाहिए राजा को और राजा को रात्रि में दिवस होना चाहिए जैसे योगी होता है। योगियों के लिये देखो रात्रि दिवस होता है और दिवस रात्रि होती है। जब यह संसार का प्राणी जागता रहता है तब उस समय परमात्मा का भक्त विश्राम करता है और जब यह संसार का प्राणी विश्राम करता है तो परमात्मा का भक्त परमात्मा के अवधान में, मानो उसकी रचना में अपने को ले जाता है और उसका ध्यान करता रहता है। इसी प्रकार राजा को चाहिए कि राजा को रात्रि उसके लिये दिवस होना चाहिए, उसे प्रजा में भ्रमण करना चाहिए। अपने नाना रूपों को धारण करके और मृत्यु को विजय करके राजा को भ्रमण करना चाहिए और गृह में, राष्ट्र में किसी प्रकार की त्रुटि हो उसका व्यवधान करना चाहिए, उसके लिये वह न्यायालय में विद्यमान हो करके न्यायाधीश बनें। इस प्रकार राजा ब्रह्मज्ञानी, ब्रह्मवेत्ता बन करके ऋषित्व को प्राप्त होता हुआ ही राष्ट्र का पालन कर सकता है और राष्ट्र को उन्नत बना सकता है और यदि वह आलस्य और प्रमाद में आहार व्यवहारों में और दूसरों के रक्त के पान में लगा रहेगा तो चाहे वह रक्त प्रजा के द्रव्य का वैभव अपने में संग्रह करने वाला हो चाहे मानो किसी प्राणी का आहार बना, तपा करके पान करने वाला हो, ये दोनों ही राजा को हानिप्रद कहलाते हैं।

मैं आज कोई विशेष चर्चा प्रगट करना नहीं चाहता हूँ, विचार विनिमय केवल यह कि महानता की आवश्यकता है। चरित्र और ज्ञान की महानता से समाज ऊंचा बनता है। प्रत्येक मानव अपने कर्त्तव्य का पालन करे तो वह समाज धर्म के मर्म को जानता है। **जब कर्त्तव्य ही नहीं रहेगा तो धर्म भ्रष्ट हो जायेगा।** परमात्मा का एकोकी वाक्यों में उद्गीत गाना चाहिए। **परमात्मा एक है, वह रचनाकार**

है, वह सृष्टि का संहार करने वाला है। परमात्मा का व्यवधान हो करके धर्म एक होता है और रूढ़ियां अनेक होती हैं। इसलिये रूढ़ियों को त्याग करके धर्म को अपना करके अपनी मानवता का कल्याण करो। ऐसा मेरा मन्तव्य रहता है। इसीलिए मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से इतना वाक् उच्चारण करके अब मैं अपना विश्राम चाहता हूँ।

मेरे प्यारे ऋषिवर, अभी-अभी महानन्द जी ने अपने उद्‌गीत गाये। उनका एक ही विचार रहता है कि राष्ट्र ऊंचा हो और मानव समाज में महानता की प्रतिभा हो। उसी महानता से यह जीवन उर्ध्वा में गमन करना चाहिए , ऐसा महानन्द जी का अपना मन्तव्य रहा है। इनके विचारों में बड़ी सार्थकता रही है और इनके विचारों के गर्भ में एक मानवीय मान्यतायें रही हैं जो परम्परागतों से ऋषिकृत हैं। आज का विचार समाप्त अब वेदों का पठन-पाठन।

स्वाहा:

देखो मुनिवरो, आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद मंत्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद वाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। वह परमपिता परमात्मा अनंतमयी है और उसका ज्ञान और विज्ञान भी अनंतमयी माना गया है। उस अनंतमयी के लिये मानव सृष्टि के प्रारम्भ से वर्तमान के काल तक अन्वेषण कर रहा है और यह विचार रहा है कि वह जो प्रभु अनंतवान है, उसका ज्ञान और विज्ञान कितना विशाल है। इसके उपर मानव परम्परागतों से ही अन्वेषण करता रहा है, अपनी विज्ञानशाला में विद्यमान हो विज्ञान के उपर अन्वेषण कर रहा है और उस विज्ञान को कहाँ तक ले जाता है, इसको वह माप नहीं सकता। परन्तु एक आध्यात्मिक विज्ञानवेता आध्यात्मिकवाद में ही रमण करता इतनी अनुपम धारा में रमण करने लगता है कि आध्यात्मिकवाद उसकी आत्मा का विषय बन करके रह जाता है क्योंकि प्रत्येक मानव आत्मा की प्रेरणा के आधार पर अपने क्रियाकलापों को निहित करता रहा है। इसीलिये वेद का ऋषि यही कहता है कि आत्मा और मन, मस्तिष्क के द्वारा ही मानव को अपने क्रियाकलापों में सदैव रत्त रहना चाहिये। आज का हमारा वेद मंत्र यह कह रहा है कि प्राणम् ब्रही वर्णम ब्रव्हा स्व व्रता। ऋषि जब एक वेद मंत्र को लेकर अन्वेषण करने लगता है और विचारने लगता है कि यह जो यागाम भवि व्रणस्सुतम ब्रह्मा:, मानो यह जो याग है, यह अपने में कितना विचित्र है और परमपिता परमात्मा के अनूठे जगत की ऊँची सुगठितता में मानव अपने को उसी में गठित करना चाहता है।

सोम

मेरे प्यारे, मुझे एक काल आज स्मरण आ रहा है। आज के वेद मंत्र के आधार पर मैंने तुम्हें एक वाक्य प्रकट किया था कि ऋषि मुनियों का समूह जब भी एकंत स्थलि में विद्यमान होता है तो वे अपने गंभीर जगत में चले जाते हैं और आध्यात्मिकवाद जब उस विज्ञान में रमण करने लगता है, आध्यात्मिक विज्ञान और भौतिकवाद दोनों का जब समन्वय हो जाता है तो मानव सौम्यता को प्राप्त कर लेता है। मेरे पुत्रो, वह सोम बन जाता है। इसीलिये उस सोम को जब हम पान करते हैं तो हमारा जीवन अमरावती को प्राप्त हो जाता है। बेटा, हमारे यहाँ सोम की बड़ी विचित्र महिमा का वर्णन आता रहता है। कहीं हमारे यहाँ उत्तरायण को सोम कहते हैं। मानव जब उत्तरायण में गमन करने लगता है तो सोम की उपलब्धि हो जाती है। बेटा, हमारे यहाँ उत्तरायण का बड़ा विचित्र एक स्वरूप माना गया है क्योंकि **उत्तरायण उसे कहते हैं जहाँ मानव प्रकाश में रहता है** औ. ॅ अंधकार उसके निकट नहीं आ पाता और सोम का जो स्थान है वह उत्तरायण कहलाता है। उत्तरायण में सोम रहता है। मानव जब सौम्यता को प्राप्त होता है तो सोम का पान करने लगता है।

मेरे प्यारे देखो, सोम के बड़े प्रायवाची शब्द माने जाते हैं क्योंकि सोम कहते हैं मधुर वाणी को और **वाणी में यदि स्वाहाः होता है, मधुरपन, ज्ञान और सत्य होता है तो वह वाणी सौम्यता को प्राप्त होती रहती है।** यदि शोधन किया हुआ अन्न पान किया जाता है और जल को भी सोम बना करके पान किया जाता है तो वह सौम्य बन जाता है। हमारे यहाँ उसका नाम सोम कहा गया है। हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में सोम के बहुत से प्रायवाची शब्द हैं। जब आध्यात्मिक और भौतिकवाद दोनों जब एक सूत्र में आ जाते हैं तो उसका नाम भी सोम कहा गया है क्योंकि भौतिक ज्ञान और विज्ञान तथा आध्यात्मिक ज्ञान और विज्ञान का जब समन्वय हो जाता है तो मानव अपने में धन्य हो जाता है और वह यह स्वीकार करता है कि मैं सोम बन गया हूँ।

तो **सौम्यता को प्राप्त करना मानव का कर्त्तव्य है।** सौम्यता की आभा में रत्त रहना ही मानवीयत्व कहलाता है और वह देवत्व को प्राप्त हो जाता है।

मेरे प्यारे देखो, मुझे वह काल स्मरण आता रहा है, एक समय बेटा देखो, अमृत ब्रहे, अमरावती अमृतो संभवा क्रताः। बेटा, एक समय कात्यायनी से यह प्रश्न किया गया कि हे कात्यायनी यह सोम क्या है तो कात्यायनी ने याज्ञवल्क्य से कहा कि प्रभु मैं सोम को नहीं जानती। उन्होंने मैत्रेय से कहा कि देवी यह सोम क्या है तो मैत्रेय ने कहा कि प्रभु यह जो सोम है यह ज्ञान है, यह जो सोम है यह प्राण है और जब यजमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके स्वाहाः कहता है, वह भी सोम कहलाता है। जब सोम के इतने प्रायवाची शब्द बन गये तो महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि बोले कि हे देवी यह सोम, स्वाहाः कैसे कहलाता है। उन्होंने कहा कि यह जो स्वाहाः शब्द है यह द्यौ लोक में जाता है। यदि यजमान का या होता गणों का यज्ञशाला में मन, कर्म और वचन एकाग्र होते हैं और जिस देवता के प्रति मंत्र का उद्गीत गाया जा रहा है, उसी देवता का उसके हृदय में वास हो जाता है तो वह स्वाहाः उसी देवता को प्राप्त हो करके, वह देवता उसके बदले सोम प्रदान कर देता है। बेटा स्वाहाः जो शब्द है यह सोम बन जाता है।

मुनिवरो देखो, मैत्रेय ने कहा, अमृतम ब्रह्माः कात्याणम वस्तुते देवत्वाम, मैं एक समय अपनी एकंत स्थलि में विद्यमान हो करके मनन कर रही थी और मैं यह उच्चारण कर रही थी कि मेरा जो सोम है, मेरा जो स्वाहाः है यह सर्पराज को प्राप्त हो जाये अथवा यह सिंह राज को प्राप्त हो जाये तो प्रायः सिंह राज को प्राप्त हो जाता क्योंकि मन, कर्म और वचन तीनों ही उसके साथ होते। जब तीनों साथ रहते हैं तो मैं जिसे आव्हान के रूप में परिणित करना चाहती हूँ तो वह स्वाहाः उसी को प्राप्त हो जाता है। अपनी वाणी को स्वाहाः कहते हैं अपने चित्रों को स्वाहाः कहते हैं। मानो देखो, साकल्य की जो धारायें उत्पन्न होती हैं और उन धाराओं को जो अपने में पान करना चाहता है जानों की वह सोम का पान कर रहा है।

माता मल्दालसा का सोम याग

मेरे प्यारे देखो, माता मल्दालसा का जीवन स्मरण आता है। माता मल्दालसा ने वेद मंत्रों में अध्ययन किया। एक समय वह अपने में वेद मंत्रों का उद्गीत गा रही थीं। उन्होंने अपनी यज्ञशाला में प्रातःकालीन याग किया और याग के पश्चात् गान गाने लगी और वह गान था 'सोमम् ब्रह्माः वर्णस्सुतम व्राचाम् चक्रे व्रत्ताहाम् देवत्वम् महा वर्णम् प्राणाः।' देखो, वह उद्गीत गा रही माता मल्दालसा कहती कि मेरा जो यज्ञ का स्वाहाः है यह सोम को प्राप्त हो जाये, मानो यह सोम को प्राप्त होता रहे तो वह सोम को प्राप्त हो गया। अब विचार आया कि सोम यहाँ किसे कहा गया। मेरे प्यारे देखो, वेद की एक आख्यिका आती है और वेद मंत्र कहता है 'सोमम् ब्रह्माः स्वंभवा, सोमम् त्रिवर्णम् भव्य आत्मां भू वर्णम्' मानो देखो, सोम उसे कहते हैं जहाँ आत्मा का परमात्मा से मिलान होता है। **आत्मा परमात्मा की प्रतिभा में रत्त हो जाता है तो उसको सोम कहते हैं।** मानो देखो, मिलन होने का नाम सोम है। संधि को हमारे यहाँ सोम कहते हैं। मेरे प्यारे देखो, जब दो वस्तुओं की संधि होती है, मिलन होता है, जैसे आत्मा-परमात्मा का मिलन होता है, जैसे वाह्य जगत और आंतरिक जगत का समन्वय होता है, जैसे स्वाहाः उच्चारण करने वाला यज्ञमान जब स्वाहाः कहता है, स्व, अ दोनों का मिलन होता है तो बेटा, उसको सौम्य कहते हैं। विचारने में आता है कि वह सौम्य आभा कहलाती है। विचार आता रहता है, मेरे पुत्रो देखो, सोम बम्ब्रहा, हम सोम के आधीन न बनें, सोम हमारे आधीन बने। सोम हमें प्राप्त हो परन्तु हम सोम को प्राप्त न हों। ऐसा बेटा, उद्गीत गाने वाला उद्गीत गाता है। माता मल्दालसा ने यह वाक् अपने में श्रवण किया तो बेटा, सोम प्राणों को भी कहते हैं। जब प्राण और अपान को मिलाने की सत्ता मुनिवरो ! साधक में हो जाती है तो वही साधक 'उन्मम ब्रहे, स्वाहाः' कह करके प्राण और अपान दोनों का समन्वय करता है। जब दोनों का संधि काल हो जाता है तो उसको सोम कहते हैं। मेरे प्यारे, वही तो सौम्य कहलाया गया है।

मुनिवरो देखो, माता मल्दालसा ने याग करने का विचार बनाया। जैसे यजमान वाह्य जगत में अग्नि का ध्यान करता हुआ उदबुद्ध स्वाहाः से अग्नि को प्रचंड करता है उसी प्रकार जब मेरी प्यारी माता याग करती है तो उसका याग ही कुछ और प्रतिभाशाली होता है। बेटा, वेद मंत्रों में इस प्रकार की अनंन्य विद्यायें हमारे यहाँ आती रही हैं जिनको प्रायः हमारे यहाँ मातायें जानती हैं। मातायें उस काल में जानती रही हैं, आधुनिक काल का तो मुझे इतना प्रतीत नहीं है, परन्तु जो माता प्राणों को जान लेती है और प्राणों का संविधान जान लेती है तो वह माता अपने में सोम का पान करा सकती है।

मुझे बेटा, माता मल्दालसा का जीवन प्रायः स्मरण आता रहता है। **माता मल्दालसा** के सम्बन्ध में वैदिक साहित्य में यह आया है कि वे अपने विचारों में **अपने प्राण और अपान दोनों का समन्वय करती हुई गर्भस्थल के आत्मा, अथवा शिशु से वार्ता प्रकट करती रही है।** माता मल्दालसा जब उसका उद्बुद्ध गान गाती तो आत्मा से कहती 'कतमो सी व्रहणाः कृतम' हे आत्मा तू कौन है, कैसे मेरे गर्भ में तूने प्रवेश किया है। मुनिवरो देखो, वह आत्माम् भूवर्णम् ब्रहे। मेरे प्यारे देखो, प्राण और अपान दोनों के समन्वय से ही माता के गर्भ की आत्मा अपने से वार्ता प्रकट करती है। जब प्राण और अपान दोनों का मिलन होकर उसमें समान की पुट लगाई जाती है और पुट लगा करके उदान के ऊपर सवार हो जाते हैं और सामान्य प्राण के आधार पर जब वह गमन करते हैं तो माता इतनी साधक बन, माता मल्दालसा अपने गर्भ की आत्मा से वार्ता प्रकट करती और उसको साक्षात्कार दृष्टिपात करती। वे कहती हैं कि हे आत्मा, मेरे गर्भ में तेरा प्रवेश हुआ तो गर्भ का आत्मा कहता है कि सोमं सोमं सममब्र्व्हे क्रतम्, मानो देखो हम सोम को पान करने आये हैं। मेरे प्यारे देखो, वह सोम को पान कराती है। उस सोम में एक औषध होती है जो पर्वतीय क्षेत्रों में प्राप्त होती है। उस औषध को ले करके और उसमें मृचीका औषध का समन्वय करते हुए, उसको खरल करके जब उसको अग्नि में

तपा करके और उसको स्वच्छ बना करके और गायात्राणी मंत्रों से उसको पुट दी जाती है, गायत्री मंत्रों से पुट दी जाती हैं। वेद मंत्रों से भी, मानो देखो महा मृतिका मंत्र से भी उसको पुट लगाई जाती है तो वह तपा हुआ औषध, वह अमृत बन गया है, वह सोम बन गया है। उसको माता पान करती है। जो भी माह आता है उस माह का वह औषध बना करके, सोम बना करके, वह अपने गर्भ के आत्मा को प्रदान करती रही और वह जब कहती है कि प्राणाय स्वाहाः, अपानाय स्वाहाः, व्यानाय स्वाहाः, उदानाय स्वाहाः, समानाय स्वाहाः कह करके उसमें आहुति देती है। स्वाहाः कहती है तो मुनिवरो देखो, वह सोम याग कहलाता है, उसे हम सौम्य याग कहते हैं। उससे गर्भ का आत्मा, गर्भ का शिशु, ब्रह्मवेत्ता की विद्या को माता के उद्‌गारों से अपने में ग्रहण कर रहा है।

मेरे प्यारे देखो, मुझे कुछ ऐसा स्मरण आता है कि वैदिक साहित्य में इस प्रकार की विद्यायें, माता और आचार्यों के गृहों में पनपती रही हैं। इस प्रकार का विज्ञान प्रायः हमारे यहाँ होना चाहिये। मुझे माता मल्दालसा का जीवन स्मरण है कि वे अपने गर्भ की आत्मा को ब्रह्मविद्या देती रहीं। वह ब्रह्म विद्या माता ही दे सकती है क्योंकि माता जो है वह 'पांचम ग्रहे, द्वितीय व्रणः आस्सुवातम पृथ्वी लोकाम' मानो वह प्रत्येक माह में लोक-लोकान्तरों की शिक्षा देकर अंत में कहती है कि यह ब्रह्म का एक चक्र कहलाता है, ब्रह्म की एक माला कहलाती है और इस माला को तुम धारण करो। उसी माला के आश्रित बाल्य माता के गर्भ में पनपता रहा है। मुनिवरो देखो, माता मल्दालसा ब्रह्मविद्या दे रही है और ब्रह्मविद्या पाना ही मानवीयता का एक कर्त्तव्य माना गया है। विचार आता रहता है बेटा, माता इस प्रकार सोम का पान करती रही हैं। वे मातायें जब सोम का पान करती हैं तो उनके गर्भ से उर्ध्ववेत्ता ब्रह्मचारियों का जन्म होता है। वे ब्रह्मवेत्ता बन करके ब्रह्म की चर्चा करते रहते हैं। वे अपने में ब्रह्मनिष्ठ होते रहे हैं। तो इस प्रकार का विज्ञान जो अपने में धारण करता है वह महान और पवित्र कहलाता है।

बेटा, मैं द्वितीय, किस विषय पर चला गया हूँ। यह आज का विषय मेरा नहीं था परन्तु मुझे कहीं से यह प्रेरणा प्राप्त हो रही थी कि इस विषय पर उद्गार दिये जायें। मैं याग के सम्बन्ध में विचार विनिमय दे रहा था कि माता अपने में भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों में परिणित होती रही हैं। मेरे प्यारे देखो, इसी प्रकार याग कितने ही प्रकार के होते हैं। उन यागों के उपर मैं बहुत से कर्मकांड भी जानता हूँ परन्तु कुछ नहीं जान पाया। बेटा, जैसे अग्नि स्टोम याग कहलाता है, वह अग्नि के उपर याग अस्वत हो करके वह अंतरिक्ष में, द्यौ में अपनी उड़ान उड़ता रहता है। वे शोधन करते रहते हैं, वे विज्ञान के वांग्मय में जब प्रवेश होते हैं तो विज्ञान की उन धाराओं में वह रमण करता है जहाँ पृथ्वी के गर्भ में वे तरंगें जायेगी तो वहाँ भी सोम उत्पन्न करेंगी। वे वाह्य जगत में, अग्नि की धाराओं में और वायु की तरंगों में रमण करेंगी और वहाँ भी अमृत को प्रदान करती रहेंगी। वे सोमवेत्ता बना देती हैं, वे सौम्य बनाती रहती हैं। आओ मेरे पुत्रो मैं इस संदर्भ में कोई विशेष चर्चा प्रकट नहीं करूँगा, केवल विचार विनिमय यह कि हम अपने में याज्ञिक बनें क्योंकि याग का प्रकरण बड़ा विचित्र प्रकरण है। ऋषि मुनि बेटा एकंत स्थलियों में विद्यमान हो करके अपने में यागों का चयन करते रहे हैं। मेरे प्यारे, सत्य उच्चारण करना और सत्य भी वेद के मंत्रों से गुथा हुआ हो तो वह भी तरंगें बन करके याज्ञिक बन जाती हैं। बेटा, एक यजमान जब अग्नि में स्वाहाः कहता है तो स्वाहाः का अपना बड़ा महत्व माना गया है क्योंकि यजमान का शब्द हृदय से और उसका हृदय याग में तन्मय रहना चाहिए। देखो, मन, कर्म, वचन उसी की आश्रितता में रमण करने चाहिए और जब वह स्वाहाः उच्चारण करता है तो मानो स्वाहाः उसे द्यौ लोक में पहुँचा देता है, उसे द्यौ में प्रवेश करा देता है।

बेटा मुझे स्मरण आता रहा है, एक समय **शिकामकेतु उद्दालक मुनि के यहाँ उनकी पत्नी रम्भेश्वरी** ने यह कहा कि प्रभु, वेद मंत्रों में यह

स्वाहाः की ध्वनि क्यों आती है, यह ध्वनित क्यों हो रहा है ? तो उस समय शिकामकेतु उद्दालक ने यह कहा था कि इसके उपर हम विचार विनिमय करें। दोनों ने विचार किया और विचार में यह आया कि यह जो स्वाहाः है, यह आत्मा है। यह आत्मा कहलाता है। देखो, जब माता के गर्भ में शिशु विद्यमान होता है तो वह भी आंतरिक जगत में बेटा, स्वाहाः की ध्वनि से अपने में ध्वनित होता रहा है। इसी प्रकार मुनिवरो देखो, जब यजमान अपने में ध्वनित होता हुआ स्वाहाः कहता है तो वह भी ध्वनि स्वाहाः बन करके द्यौ में प्रवेश कर जाती है। वह आत्मा की ध्वनि है। मानो देखो, आत्मा का वह रूप है। जैसे एक मानव के शरीर में आत्मा विद्यमान होता है और वह जब तक शरीर में रहता है, शरीर चेतनित बना रहता है। जब तक आत्मा शरीर में रहता है मानव बुद्धिमान बना हुआ है। जब तक आत्मा शरीर में विद्यमान है तब तक वह मानव नाना प्रकार का अनुसन्धान कर रहा है। जब तक आत्मा इस शरीर में विद्यमान है तभी तक मानव संसार का विज्ञानवेत्ता बन जाता है। जब तक आत्मा विद्यमान है तब तक यौगिक क्षेत्र में जाकर सूर्य की किरणों के साथ वह मानव सूर्य का यात्री बन जाता है। मेरे प्यारे देखो, चन्द्रमा का यात्री बन जाता है और सूर्य के साथ में वह परिक्रमावत्त हो करके परिवर्तित हो जाता है। परन्तु यह आत्मा जब तक शरीर में विद्यमान है वह पिता कहलाता है, वह पति बन जाता है, मानो देखो, वही आचार्य बन करके ब्रह्मचारी को शिक्षा देता है। वही आत्मा ब्रह्मचारी के रूप में आचार्य के चरणों में विद्यमान है। मुनिवरो, इसलिये यह आत्मा अमृता कहलाता है। यह आत्मा ही तो अमृता है, मानव जिसके लिये प्रयास करता रहता है। तो विचार आता है कि अमृता को जाना है, अमृतम ब्रह्मा आत्मा, मेरे प्यारे देखो जो ब्रह्म आत्मा होते हैं वही तो अमृत है, उसी को पान करना। वह बाल्य ब्रह्मचारियों का आत्मा है, वह माता ही आत्मा है। माता को जब अग्नि में दाह कर दिया जाता है तो कुछ समय पश्चात् माता स्मरण नहीं आती। तो विचार आता है कि आत्मा जब तक विद्यमान है वही माता है, वही पितर है और मुनिवरो देखो, वही आचार्य के रूप में विद्यमान हमें दृष्टिपात आता है वही ब्रह्मचारी के रूप में

है। तो मानो इस प्रकार जो इसे जानता है तो मुनिवरो यह स्वाहाः कहलाता है। उसी का नाम स्वाहाः है जिसके न रहने से मानव मृतक है, शून्य है, अंधकार है और जिसके रहने से सर्वत्र चौमुखी बना हुआ है। वह कहीं वैज्ञानिक बना हुआ है, अंतरिक्ष की यात्रा कर रहा है।

अंतरिक्ष में उड़ान

मेरे पुत्रो, मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब महर्षि तत्व मुनि महाराज और ब्रह्मचारी श्वेता श्वेतर और ब्रह्मचारी रोहणीकेतु और यज्ञदत्त इन चारों ब्रह्मचारियों ने अपनी विज्ञानशाला में, अपने में विद्यमान हो करके जब देखो, यंत्र में रमण करने लगे तो यंत्र ने जब अपने विद्यालय से, तत्व मुनि के यहाँ से गमन किया तो वही चन्द्रमा में प्रवेश कर गया। चन्द्रमा से उड़ान उड़ता है तो बुद्ध में चला गया और बुद्ध से उड़ान उड़ी तो वह मंगल में प्रवेश कर गया और मंगल से उड़ान उड़ी तो वह स्वाति नक्षत्र में चला गया। जब वहाँ से उड़ान उड़ता है तो कृतिका नक्षत्र में प्रवेश हो गया और जब कृतिका नक्षत्र से उड़ान उड़ता है तो वह रोहणीकेतु मंडल में प्रवेश हो गया और जब वहाँ से उड़ान उड़ता है तो वह मूल नक्षत्र में प्रवेश कर गया और मूल नक्षत्र से उड़ान उड़ता है तो मानो देखो, वह अरुंधति मंडल में चला गया। अरुंधति मंडल से उड़ान उड़ता है तो वशिष्ठ मंडल में चला गया। जब ये वशिष्ठ मंडल से अपने मार्ग को गमन कर रहे थे तो वह मानमब्रहे, वशिष्ठ मंडल में उन्होंने अपने विमान को विश्राम कराया और वहाँ के प्राणियों से वार्ता प्रगट की। वे प्राणी उद्गीत गा रहे थे 'स्वाहाः संगत्तः प्रव्हे स्वाहाः तो उन्होंने कहा हे प्राणम ब्रहे, यह तुम क्या उद्गीत गा रहे हो ? उन्होंने कहा कि हम याग से अपनी वाणी को पवित्र बना रहे हैं क्योंकि वाणी जब भी पवित्र बनेंगी तो स्वाहाः शब्दों से ऊँची बनेगी। **स्वाहाः शब्दों से वाणी में तेज और ओज की उत्पत्ति आयेगी।** इसलिए परमात्मा की उस ध्वनि में हम ध्वनित हो रहे हैं जिस ध्वनि में ध्वनित हो करके हमारा अंतःर्आत्मा पवित्रता को प्राप्त होगा। मानो देखो, यह

स्वाहाः ही यज्ञ में जाओ तो यज्ञ की आत्मा है, शरीर में जाओगे तो आत्मा रूप बन करके यह स्वाहाः ही आत्मा कहलाता है। देखो, यदि राष्ट्र में चले जाओ तो राष्ट्र का चरित्र ही स्वाहाः कहलाता है और यदि चरित्र यदि राष्ट्रीयता से स्वाहाः चला जाता है तो राष्ट्र का प्राण चला जाता है।

इसी प्रकार प्रत्येक आभा में जब तुम दृष्टिपात करोगे तो यजमान का वह शब्द अपने में स्वाहाः है जो द्यौ लोक में रमण कर रहा है जो लोक-लोकान्तरों की प्रतिभा बना हुआ है तो इसलिये स्वाहाः के उपर अपने विचार होने चाहिए। मेरे प्यारे यजमान को स्वाहाः कहना चाहिए परन्तु **यजमान यदि मन, कर्म, वचन एकाग्र हो करके स्वाहाः देता है तो उसके प्राणों की रक्षा वह स्वाहाः करता रहता है।** उसका प्राण नहीं जाता, उसका प्राण बलवती हो जाता है, प्राण उसका साथ में गमन करता है। मेरे प्यारे देखो, इस प्रकार वेद के वांग्मय में, शब्दों में आता रहता है। बेटा, आज मैं वेद के उन रहस्यों में उद्गीत नहीं गाना चाहता हूँ, केवल यह कि हम यज्ञ में स्वाहाः उच्चारण करें जिस स्वाहाः की वाणम ब्रहे, यह वाणी ही तो स्वाहाः है। यह वाणी चली जाती है तो बेटा देखो, मानव निःशब्द हो जाता है, निर्ध्वनित हो जाता है तो इसलिये स्वाहाः कह करके हमें हूत करना चाहिए।

स्वाहाः के उपर मुझे स्मरण आता रहता है, मैं शिकामकेतु उद्दालक की चर्चा कर रहा था। जब रम्भेश्वरी ने यह कहा कि प्रभु यह **स्वाहाः** क्या है तो उन्होंने कहा देवी, यही तो आत्मा है, यही तो मानो देखो, **अग्नि की आत्मा है।** जब अग्नि देवताओं को चरु प्रदान कर देती है, जब देवताओं को साकल्य देती है, जब देवताओं को यह हवि दे करके स्वतः प्रसन्न होती है और प्रसन्न हो करके स्वतः हवि बन करके, ज्ञान की हवि बन करके यह प्रकाश ही प्रकाशमय ज्योति बन जाती है। मेरे पुत्रो देखो, जब ऋषि ने वेद मंत्र के वांग्मय में इस प्रकार की चर्चायें कीं तो उस समय अभ्यम ब्रह्मणा व्रेती देवत्वाम वे अभ्यो ब्रहे, मानो देखो, उसके चित्र आने लगे। शिकामकेतु उद्दालक रम्भेश्वरी से बोले

कि देखो देवी यह यंत्र है और इन यंत्रों में चित्रावली आ रही है और वह चित्रावली उसमें रत्त हो रही है। हे देवी, तुम्हें यह प्रतीत है कि स्वाहाः कहने से ही यह स्वाहाः यंत्र बन गया है और यही स्वाहाः वाणी की ध्वनि बन करके अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके यही द्यौ को जाता है और शब्द में चित्र है, शब्द में एक आकार और ध्वनियां हैं, जब हम यंत्रों का निर्माण करते हैं तो द्यौ से शब्द के आकार उनके क्रियाकलापी चित्र दृष्टिपात आते रहते हैं।

विचार विनिमय क्या कि बेटा, विज्ञान अपने में बड़ा माधुर्य बन करके रहा है। विज्ञान अपने में विज्ञान रूप बन करके रहा है तो मुनिवरो मैं विशेषता में तो तुम्हें ले जाऊँगा नहीं केवल विचार विनिमय यह कि **स्वाहाः याग की आत्मा है,** यह यजमान का आत्मा कहलाता है, यह परमाणुवाद को अपने में निगलने वाला है और यह अग्नि देवता का मुख कह करके यह नाना प्रकार के याग को अपने में प्रकाश में लाता चला जाता है। जैसे अश्वमेघ याग है, अश्व के नाना रूप माने गये हैं। अजामेघ याग, वाजपेयी, अग्निस्टोम यागों के भी भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। मेरे प्यारे ऋषियों की यह एक महान उपलब्धि रही है जिसके उपर हमें विचारना है, अन्वेषण करना है। जैसे देखो, एक मानव वेद मंत्रों का उद्‌गीत गा रहा है और प्रारम्भ में वह ओ३म् उच्चारण कर रहा है, अ, उ और म यह तीन अक्षर कहलाते हैं, तीनों धारायें हैं, जब वह उसका उद्‌गीत गाता है उसके पश्चात् वह मंत्र ही मंत्रणा करता हुआ वेद मंत्रों का उद्‌गीत गाता है और उद्‌गीत गाता हुआ मानो देखो, वह ओ३म् में पिरोया हुआ है। जैसे मुनिवरो देखो नाना प्रकार के मनके होते हैं और वह मनके सूत्र में पिरोये जाते हैं तो वह माला बन जाती है। इसी प्रकार यह ब्रह्मांड माला के सदृश्य है। इसी प्रकार ये जो वेद मंत्र हैं ये माला के सदृश्य हैं, मानो ओ३म् रूपी सूत्र में, ओ३म् रूपी धागे में यह सर्वत्र ब्रह्मांड का एक-एक वेद मंत्र पिरोया हुआ है और उसकी माला बन जाती है। देखो, कहीं ज्ञानकांड रूपी माला है,

कहीं कर्मकांड रूपी माला है, कहीं ज्ञान माला है मुनिवरो, यह त्रिवर्धा बन जाती है। यह त्रिविधा कहलाती है - ज्ञान, कर्म और उपासना की माला बन करके यह ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोई जाती है। इसीलिये उद्‌गाता जो यज्ञशाला में वेद मंत्रों की ध्वनि के सहित उद्‌गान गा रहा है वह ओ३म् का उच्चारण पूर्व करता है क्योंकि जितना भी एक-एक अक्षर है वेद मंत्र में, वह ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोया जाता है। इसी प्रकार संसार का जितना भी ज्ञान अथवा विज्ञान है, कर्मकांड है वह सब ओ३म् रूपी सूत्र में पिरोया हुआ है।

ब्रह्म सूत्र

मेरे प्यारे जैसे ये नाना प्रकार के लोक-लोकान्तर हैं, मानो जैसे यह पृथ्वी है, इस पृथ्वी का सूत्र सूर्य है और सूर्यों का सूत्र बृहस्पति है और बृहस्पति का सूत्र आरुणी मंडल है और आरुणी मंडलों का जो सूत्र है वह ध्रुव कहलाता है और ध्रुव का सूत्र पुष्प नक्षत्र है और पुष्प नक्षत्रों का सूत्र स्वाति नक्षत्र है और स्वाति नक्षत्रों का सूत्र मूल नक्षत्र कहलाता है और मूल नक्षत्र जिसमें पिरोये जाते हैं, व्रेणकेतु मंडल उसका सूत्र बना हुआ है और व्रेणकेतु मंडल का सूत्र अचंगवृतिका मंडल कहलाता है और अचंगवृतिका मंडल का सूत्र गंधर्व कहलाता है और गंधर्व का सूत्र इन्द्र कहलाता है और इन्द्र का सूत्र प्रजापति कहलाता है और प्रजापति का जो सूत्र है वह मुनिवरो, याग कहलाता है। मेरे प्यारे, सूत्रों मे सूत्र बनते चले गये और जब इसके उपर अन्वेषण होगा तो यह जो नाना प्रकार का जो सौर मंडल है ये एक दूसरे में पिरो करके एक माला बन गई है और भिन्न-भिन्न प्रकार की मालायें तुम्हें दृष्टिपात आयेंगी। वही माला जब अग्रणीय बनेंगी तो वही मालम ब्रव्हे क्रतम देवाहा, मेरे प्यारे एक आकाश गंगा इसकी माला बन जायेगी और अरबों-खरबों आकाश गंगाओं को जब एक सूत्र में पिरोया जाता है तो उसका सूत्र निहारिका बनेगी और लगभग पौने दो अरब निहारिकाओं की एक अवंतिका बन करके मुनिवरो देखो, ऋषि नेति-नेति कह करके मौन हो जाता है।

विचार आता रहता है बेटा, मैं बहुत दूरी चला गया हूँ, गंभीर क्षेत्रों में चला गया हूँ। विचार-विनिमय क्या मुनिवरो देखो, यदि एक दूसरा अपने सूत्र को अपने में धारण कर दे तो बेटा, यह संसार विकृत बन जायेगा, यह संसार वृहीत बन जायेगा। इसी प्रकार ब्रह्म सूत्र में पिरोया हुआ यह सर्वत्र जगत है और ब्रह्म सूत्र यह आत्माम भू वर्णम ब्रह्माः, यह जो मानव के शरीर अथवा जैसे वेद मंत्रों में ओ३म् ध्वनि आती है और ओ३म् कह करके आगे वेद के मंत्र के सजातीय शब्दों का उद्‌गीत गाया जाता है तो वह पवित्र सूत्र बन करके उसमें जो ज्ञान है, विज्ञान है, कर्मकांड है, मानवीयता है वह सब उसमें पिरोई जाती है। बेटा, आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा नहीं प्रगट करूँगा। विचार-विनिमय क्या ? मैं तो वन में चला गया हूँ, यह तो विचारों का वन है। मेरे प्यारे इसलिये मैं उच्चारण कर रहा हूँ कि स्वाहाः वेदाम ब्रह्मेः, यज्ञ की आत्मा है। मानो देखो, यज्ञम ब्रह्माः, स्वाहाः का अर्थ है स्वा हा आम मम ब्रहे क्रतम मैं हा व्रणम ब्रहे, मैं यहाँ विद्यमान हूँ तो यह इसका रूप बन करके जो स्वाहाः करता है तो अग्नि में अपने विचारों को व्यक्त कर देता है। अग्नि देवताओं का मुख है, जैसे साकल्य जाता है ऐसे ही स्वाहाः भी उसमें प्रवेश हो गया है। उस अग्नि ने स्वाहाः को ले करके द्यौ लोक में पहुँचा दिया है, द्यौ मंडल में प्रवेश कर दिया है। उसके क्रियाकलाप और उसका मांगलम, मानो उसका शब्द और उसका आकार द्यौ में प्रवेश हो जाता है, वह निहित रहता है। जो मानव उसे अपने में धारण कर लेता है उसी को वह प्राप्त हो जाता है।

आओ मेरे प्यारे, मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ, मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ, संक्षिप्त विचार देने चला आता हूँ। वे विचार क्या हैं कि हम परमपिता परमात्मा की महती को जानते हुए संसार सागर से पार होने वाले बनें और स्वाहाः कह करके अपने मन, कर्म, वचन के द्वारा द्यौ में अपने को पहुँचायें। यही बेटा आज का हमारा वाक्, अब मैं इस वाक् को समाप्त कर रहा हूँ। आज के विचारों का अभिप्राय यह कि हमें परमपिता परमात्मा

के ब्रह्मांड, परमात्मा के जगत को अनुसन्धान युक्त हो करके जानना चाहिए। प्रत्येव रूप में जान करके अपने को अपने में ही निहित कर देना चाहिए। यही बे आज के विचारों का आशय है। वास्तव में मैं देवता, ब्रह्मणे:, स्वाहा: की वात को मैं किसी काल में प्रगट करूँगा, अपने विचारों को पूर्ण-रूपेण नहीं क सका हूँ। समय मिलेगा तो शेष चर्चायें मैं तुम्हें कल प्रगट करूँगा। आज वाक् समाप्त अब वेदों का पठन-पाठन।

लाजपत नगर
नई दिल्ल
११-४-८९

इसी स्थान पर अगले दिन दिये प्रवचन का अंश:

यज्ञशाला नाना प्रकार के कोणों वाली होनी चाहिए। सबसे उत्तम यज्ञशाला है वह चतुषस्कंद कहलाती है, द्वितीय जो यज्ञशाला है वह त्रिकोण कहला है और पंचम कोण का भी वर्णन प्रायः आता रहा है। इस प्रकार यजमान जब या करें तो साकल्य समिधा और यज्ञशाला सुन्दर बननी चाहिए। यज्ञशाला द्विको चतुषकोण, त्रिकोण और नवम कोण तक का विधान आया है। उसमें जब यजमा याग करता है तो इस संसार के एक लोक को विजय कर लेता है। राष्ट्र व लोकप्रियता वह अपने में धारण कर लेता है।

लाजपत नगर
नई दिल्ली
१२-४-८९

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी इस युग के अद्भुत वेद वक्ता थे। इस जन्म में उन्हें किसी विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला परन्तु वे पूर्व जन्मों की स्मृति से वेद संहिताओं का पाठ और फिर उन मंत्रों की व्याख्या करते थे। अपने प्रवचनों में उन्होंने पूर्व जन्मों में देखी अनेक घटनाओं का विवरण दिया जिनसे प्राचीन भारतीय इतिहास के कई लुप्त अथवा विकृत तथ्यों की बुद्धिसंगत वास्तविकता का पता चलता है।

ब्रह्मचारी कृष्णदत्त जी कर्मों के भोग, आत्मा के पुनर्जन्म और अंतःकरण से जन्म-जन्मान्तरों के संचित ज्ञान के स्पष्ट प्रमाण थे। पन्द्रह अक्तूबर १९९२ को उन्होंने ५० वर्ष की अवस्था में अपने नश्वर शरीर को त्यागा परन्तु इसकी उद्घोषणा उन्होंने ३० वर्ष पहले ही ९ मार्च १९६२ को कर दी थी।

उनके कुछ महत्वपूर्ण प्रवचनों का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है।

वैदिक अनुसन्धान समिति (पंजिकृत)

१, (प्रथम तल) गोखले मार्केट, तीस हजारी कोर्ट के पास,

दिल्ली-११००५४, फोनः २५१००७१